जन्मशती-हीरक-स्वर्ण जयन्ती महोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में

सोहन-काव्य कथा-मञ्जरी

भाग–१

रचनाकार :

प्रवर्तक श्री सोहनलालजी म. सा.

सोहन-काव्य कथा-मञ्जरी



प्रवर्तक श्री सोहनलालजी म० सा०



प्रकाशक :

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्यायी संघ
गुलाबपुरा–३११ ०२१ (राज०)



प्रथम संस्करण : १९८७



मूल्य : दस रुपये



मुद्रक :

फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर–३०२ ००३

सोहन-काव्य कथा-मञ्जरी

भाग–1

कथा-क्रम



प्रकाशकीय

साहित्य की विधाओं में कथा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि स्वयं मानव की सृष्टि।

जब दो व्यक्ति मिलते हैं एवं परस्पर कुशल-क्षेम के समाचार पूछते हैं, तब वे अपनी ही कहानी कहते हैं या सुनते हैं। यह कहानी का उद्‌गम स्रोत है।

तब से अब तक इस कहानी ने एक लंबी दूरी की यात्रा तय की है। कथा से कहानी, फिर लघुकथा व बोधकथा के रूप में विकसित होकर अब वह अ-कहानी की सीमा को स्पर्श करने लगी है।

किसी भी आयु के व्यक्ति के लिए कहानी सुनना या पढ़ना आनन्ददायक होता है। विविध घटनाक्रम के साथ संजोये गए पात्रों के गतिमान जीवन के माध्यम से मानो पाठक अपनी ही कहानी पढ़ता है। वह घटनाक्रम भी अपनी बात कहकर पाठक के मन में निराकार रूप में पैठकर उसे आन्दोलित करता रहता है अतः उसकी अनुगूंज तो लंबे समय तक सुनाई पड़ती रहती है। इस प्रकार कहानी जीवन से एवं उसके मूल्यों से जुड़ जाती है तथा मानवीय मूल्यों की समृद्धि का माध्यम बनती है।

कथा का मूल आधार घटना का चमत्कार होता है तथा घटना-चमत्कार किसी धार्मिक, नैतिक या साहसिक मूल्य की स्थापना करता है। अति प्राचीनकाल में लिखी गई पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी आदि की कथायें नीति की शिक्षा प्रदान करने वाली रही हैं जिनसे व्यक्ति व समाज के जीवन को एक दिशा मिली है। उनमें वर्णित व्यक्ति एकाकी न होकर सम्पूर्ण समाज के एक प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित होता है इसलिए उसके जीवन से पाठक प्रेरणा प्राप्त कर पाते हैं। यद्यपि कथा का प्रस्थान बिन्दु व्यक्ति है किन्तु गन्तव्य तो समाज ही होता है।

इस कथा-शिल्प के साथ यदि काव्यात्मकता का भी मधुर मेल हो जाय तो सोने में सुगंध आ जाती है। गेयतत्त्व का मेल होने के कारण उसकी प्रभावशीलता द्विगुणित होकर पाठक के मन पर स्थायी असर कर जाती है।

प्रस्तुत काव्यात्मक कथा-संकलन के कथा-शिल्पी विद्वद्वरेण्य, [illegible] मधुर प्रवक्ता, आशुकवि गुरुवर्य श्री सोहनलाल जी म. सा. भी [illegible]

अमर कथाकार हैं जिन्होंने अपनी कथाओं के माध्यम से, तर्कजाल की भांति उलझे हुए मनुष्य के मन की जटिलताओं को सुलझाया है, सांसारिक व्यामोह से उसे मुक्त कर मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति से उसे सम्पन्न बनाया है, और इस प्रकार स्वस्थ, अनासक्त एवं समर्पित व्यक्ति का तथा शुद्ध आधारवाले समाज का निर्माण किया है।

यह वर्ष, श्री स्वाध्यायी संघ के आद्यसंस्थापक, सुदीर्घ विचारक, राजस्थान केसरी, श्रद्धेय गुरुवर्य श्री पन्नालाल जी म. सा. का जन्मशती वर्ष होने से इस क्षेत्र की जनता के लिए मील का पत्थर साबित हुआ है। वहीं हमारे चरित-नायक स्वाध्याय-शिरोमणि श्रद्धेय गुरुवर्य श्री सोहनलाल जी म. सा. अपने जीवन के ७७ वें वर्ष में प्रवेशकर अपने महिमा-मंडित जीवन से हमें सार्थक आशीर्वाद प्रदान कर रहे हैं।

पूज्य गुरुदेव के अनुयायी भक्तों की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उनके अब तक के प्रकाशित व अप्रकाशित काव्यात्मक कथानकों को—जो लगभग ३०० से भी अधिक हैं—क्रमशः प्रकाशित कराया जाय ताकि पाठक उनसे समुचित लाभ उठा सकें एवं साहित्य के अनुसंधित्सुओं के लिए भी पथचिह्न बन सकें। वर्तमान विषैले वातावरण में युवकों को सत्साहित्य उपलब्ध नहीं होने से वे घटिया एवं चरित्र हन्ता साहित्य पढ़कर अपना समय नष्ट करते हैं, उन्हें भी व्यवहार व धर्मनीति परक साहित्य सुलभ कराना भी इसका एक उद्देश्य रहा है।

इसी भावना के अनुसार पूज्य गुरुदेव श्री के कथानकों को क्रमशः प्रकाशित करने की योजना बनी। फलस्वरूप सोहन-काव्य-कथा-मंजरी की यह सौरभ आपके समक्ष प्रस्तुत है।

इस संकलन को तैयार करने में हमें ओजस्वी वक्ता, प्रखर प्रतिभा के धनी, श्रद्धेय वल्लभ मुनि जी म. सा. का हार्दिक सहयोग मिला जिन्होंने आद्योपान्त सभी कथानकों को पढ़कर आवश्यकीय सुझावों से लाभान्वित किया है। साथ ही इसकी पाण्डुलिपि तैयार करने में सुश्री कल्पना कुमारी चौपड़ा विजयनगर ने पर्याप्त श्रम किया है, तदर्थ हम हृदय से आभारी हैं। श्रीमान् चन्द्रसिंह जी सा. बोथरा के अत्याग्रह से फ्रैण्ड्स प्रिन्टर्स जयपुर ने इसका शीघ्र ही मुद्रण-कार्य सम्पन्न किया अतः वे भी धन्यवादार्ह हैं।

आशा है पाठकगण इस काव्य-कथामाला से लाभ प्राप्त कर जीवन में नैतिकता विकसित कर सकेंगे। इसी विश्वास से—

मिलापचंद जामड़
मंत्री
श्री श्वे. स्था. जैन स्वाध्यायी
संघ, गुलाबपुरा

विजयनगर
आषाढ़ी चातुर्मासी
सं. २०४४

भूमिका

सद् विचारों एवं सदुपदेशों का जितना प्रभाव कथाओं के माध्यम से होता है उतना अन्य विधाओं से नहीं । और कथाएं भी यदि गेय-शैली में हों तो उनका प्रभाव चिरस्थायी हो जाता है तथा उदात्त हृदय शीघ्र ही सात्विकता की तरंगों में निमग्न होने लगता है। हम बचपन से ही दादा-दादी से बहुतेरी कहानियां सुनते आए हैं जिनमें से रोचक ढंग से कही हुई कहानियां सदैव स्मरण रहती हैं ।

जिन शासन के भास्कर, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र से समुन्नत, श्रुतज्ञान के धनी स्वाध्याय-शिरोमणि, प्रवर्तक, गुरुवर्य श्री सोहनलाल जी म. सा., प्रातः स्मरणीय पूज्य गुरुदेव श्री पन्नालाल जी म. सा. की मोक्षपथगामी परम्परा का निर्वाह करते हुए जहां तप और त्याग के नवीन कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं, वहीं अपनी सारगर्भित प्रतिभा द्वारा साहित्य के भंडार में अभिवृद्धि भी कर रहे हैं । 'सोहन-काव्य कथा-मंजरी' के क्रमशः प्रकाश्यमान भाग कथा-साहित्य की विशिष्ट निधि हैं ।

कहानी कहना भी एक कला है । भावों का सही सम्प्रेषण, संवेदनाओं की अनुभूति एवं चेतना का स्फुरण यदि उससे नहीं हो पाता है तो श्रोता व कथाकार का तादात्मीकरण संभव नहीं । पूज्य गुरुदेव का कथा कहने का ढंग इतना मोहक, सरल, रोचक व काव्यात्मक होता है कि श्रोता भाव-विभोर होकर आत्म-विस्मृत-सा हो जाता है । श्रोतागण अत्यधिक तन्मय होकर आपके मुखारविन्द से कथाएं सुनते हुए जब हुंकारा भरते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे उत्साह का सागर उमड़ पड़ा हो । कथा में हुंकारे का महत्त्व फौज में नगारे की चोट के समान होता है ।

संत-कवि ने कथाओं के माध्यम से जीवन की गूढ़तम समस्याओं और दर्शन के रहस्यों को जिस प्रभविष्णुता के साथ प्रस्तुत किया है, वह द्रष्टव्य है । 'सोहन-काव्य-कथा मंजरी' की प्रत्येक कथा नीति साहित्य के अन्तर्गत अन्यतम है । वस्तुतः आज विविध धार्मिक और सामाजिक मूल्यों का जिस द्रुतगति से अवमूल्यन हो रहा है उतना संभवतः पहले नहीं हुआ । आज धर्मान्धता की अफीम के नशे में मनुष्य के कदम पतन के अंधे कूए की ओर भटक रहे हैं । व्यक्ति-केन्द्रित मूल्यों ने सामाजिक सौहार्द को सड़क पर पड़ी लावारिस लाश के

समान बना दिया है। ऐसे में यदि कोई नीतिज्ञ संत मधुर शैली में समाज को दिशा बोध देने का प्रयत्न करे तो उसकी प्रशंसा होना असंदिग्ध है।

इन कथाओं का सबसे बड़ा लाभ तो यह होगा कि पाठक स्वस्थ जीवन-मूल्यों के विषय में पढ़कर उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ करने के लिए प्रेरित होगा तथा इसकी प्रत्येक कथा व्यक्तित्व के परिष्कार में सहायक सिद्ध होगी। इनसे सम्प्रेरित होकर व्यक्ति के कदम सदाचार के पथ पर अग्रसर होंगे।

संत-कवि ने महासती अनुसूया, दानवीर कर्ण, केवट आदि के जीवन से संबंधित आख्यानकों को भी काव्यात्मक शैली में वर्णित किया है।

कवि की भाषा क्लिष्टता के कटघरे में कैद नहीं है। बोलचाल की भाषा का प्रयोग ही कवि को अभीष्ट है। देशज शब्दों और मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग ने उसे रोचक और ग्राह्य बना दिया है। प्रत्येक शब्द, भाव के साथ स्वतः ही जुड़ा हुआ है। उस पर 'गिरा अरथ, जल-वीचि-सम' कहावत चरितार्थ होती है।

सभी कथाओं की भाषा-शैली रोचक व वर्णनात्मक है। कहीं–कहीं किस्सागोइ शैली का प्रभाव भी है। ऐसे स्थलों को पढ़ते हुए पाठक तादात्मीकृत हो जाता है। लोकगीतों की भाव-प्रवण लय ने इन कथाओं के गेयत्व की श्रीवृद्धि की है।

वस्तुतः यह संग्रह शिक्षाप्रद कथाओं का अपूर्व रत्नाकर है। जैसे रत्न से स्वतः ही किरणें फूटती हैं, वैसे ही इसकी प्रत्येक कथा तमसावृत मानस में सदाचार की रश्मियां विकीर्ण करती हैं।

मेरा विश्वास है कि यह काव्य-कथा-संग्रह दिग्मूढ़ मानवता को परमार्थ की ओर बढ़ने में सहायक होगा। आज हम अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को भूलकर पश्चिम के भोगवाद के पीछे अंधाधुंध भाग रहे हैं, ऐसी स्थिति में एक सन्त के अन्तःकरण से प्रस्फुटित वाणी हमारा महान उपकार करेगी। इसकी प्रत्येक कथा हमें श्रमशील, सत्यप्रिय, सदाचारी, दयालु, उत्साही, विनयी, मधुरभाषी, मेधावी, आत्मनिर्भर और ईमानदार बनाने में सहायक ही सिद्ध होगी, साथ ही कषाय–विष से निकालकर हमारा उद्धार भी करेगी।

डॉ नरेन्द्रसिंह
प्राध्यापक
रा. स. व. महाविद्यालय, ब्यावर

विजयनगर
आषाढ़ी चातुर्मासी
संवत २०४४

१ जैसा खावे अन्न

दोहा :— अशुद्ध आय के अन्न का, जो भी करे उपयोग ।
मन पर उसका असर हो, सुनो सभासद लोग ।।

(तर्ज :—राधेश्याम रामायण)

महाभारत का है प्रसंग यह, शिक्षाप्रद सबको हितकार ।
शर शय्या पर पड़े पितामह, कर रहे मृत्यु का इन्तजार ।।१।।
पांडव सोचें पितामह से, अन्तिम शिक्षा कुछ पालें ।
पांचाली को लेकर संग में, पांचों ही वहाँ पर चाले ।।२।।
मस्तक नमा यह करी प्रार्थना, शिक्षा अंतिम दे दीजे ।
बोले भीष्म सर्वस्व लगाकर, रक्षा धर्म की कर लीजे ।।३।।
सुन करके उपदेश धर्म का, पांचाली कुछ मुस्काई ।
देख उसे यों कहे पितामह, हंसी तुझे कैसे आई ।।४।।
यह सुन करके शब्द, द्रौपदी मन में अति ही शरमाई ।
क्यों असभ्यता कर बैठी मैं, ऐसे समय हंसी लाई ।।५।।
रहूँ मौन अब क्या बोलूँ, यह बात सहज टल जावेगी ।
उचित-अनुचित शब्द निकल गये, व्यर्थ बात बढ़ जावेगी ।।६।।
पर भीष्म पितामह स्पष्ट सुने बिन, कैसे यों सन्तोष करें ।
बोले बेटी संकोच त्याग कहा, जो भी दिल में भाव भरे ।।७।।
सोचे द्रौपदी स्वयं पितामह, जिसको खुद ही जान रहे ।
कौरव सभा में मेरी घटना, स्वयं आँख से देख रहे ।।८।।
वह बोली हो नम्र महात्मन् !, उपदेश आज जो सुना रहे ।
उस समय धर्म की बात कहाँ थी, अभी आप जो बता रहे ।।९।।
दुष्ट दुशासन खैंच मुझे जब, सभा भवन में ले आया ।
तन से वस्त्र खैंच रहा तब, धर्म कहाँ पर विरलाया ।।१०।।
सभा भवन में देख आपको, मैंने आर्त पुकारा था ।
उस वक्त धर्म रक्षा थी कहाँ पर, क्या वह धर्म भी न्यारा था ।।११।।

धर्म-धर्म में भेद नहीं तब, क्यों नहिं रक्षा कर पाये।
अतः हंसी आ गई मुझे बस, क्षमा भूल की बक्षायें ॥१२॥

आज धर्म की व्याख्या को यदि, वहाँ ध्यान में ले आते।
सर्वस्व नाश से अपने कुल को, कुछ तो आप बचा पाते ॥१३॥

कुछ समय मौन रह भीष्म कहे, है तेरी शंका सही सही।
समाधान पाना यथार्थ है, इससे मैं नाराज नहीं ॥१४॥

सुनो सुते! उस समय वहाँ मैं, कौरव गुण का दास रहा।
जाना धर्म से धन को ऊंचा, अतः धर्म की नहीं कहा ॥१५॥

विस्मित होकर बोली द्रौपदी, कैसे आपने फरमाया।
सदा धर्म की महिमा गाते, मन में यह कैसे आया ॥१६॥

भीष्म पितामह बोले बेटी, जो धन अनर्थ का आता है।
जिससे अथवा जहां से आता, पाप संग में लाता है ॥१७॥

पैसा पैदा किया पाप से, वह विषय विकार बढ़ाता है।
वह पैसा नष्ट हो करके भी, जाते नष्ट कर जाता है ॥१८॥

उस समय खून था उस धन का, मैं अन्न पाप का खाता था।
बुद्धि हो गई नष्ट मेरी, वह रक्त नसों में बहता था ॥१९॥

अर्जुन के इन तीरों ने, उस दूषित रक्त को बहा दिया।
दैवी बुद्धि प्रकट हुई, मोह माया लोभ से हटा दिया ॥२०॥

मैं जान रहा हूँ साफ, द्रव्य मानव को दानव करता है।
गला घोंटता दीन जनों का, फूला जग में फिरता है ॥२१॥

मोह माया अरु विषय वासना, सम्पत्ति के ये साथी हैं।
अत्यन्त अत्याचार अधर्म की, बुद्धि नर में लाती है ॥२२॥

इसीलिए मैं शुद्ध बुद्धि हो, तुमको यह बतलाता हूँ।
अन्याय अनीति तजे सत्य की, राह चलो दरसाता हूँ ॥२३॥

अन्याय युक्त धन और धर्म, ये साथ नहीं रह सकते हैं।
सहस्र रश्मि और अंधकार, नहीं एक स्थान पा सकते हैं ॥२४॥

अतः पुत्री जो जीव धर्म में, सदा सर्वदा रमण करे।
दुस्तर इस संसार समुद्र से, अपने आपको पार करे ॥२५॥

सुन पांचाली समाधान पा, मन में अति आनन्द पाई।
नत मस्तक हो बोली भगवन्, आज धर्म मैं सुन पाई ॥२६॥

'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, अशुद्ध आय है दुखदाई।
अतः आय हो शुद्ध हमारी, ध्यान रखो अब सब भाई ॥२७॥



२ लघुता से प्रभुता मिले

(तर्ज : लावणी खड़ी)

अहंभाव जब तक हो मन में, तब तक सिद्धि मिले नहीं ।
चाहे जितनी करे साधना, योग्य पात्र वह बने नहीं ।।टेर।।
कन्नोज देश के महाराजा थे, विश्वामित्र महा बलवान ।
एक वक्त ले सेना बन में, गये घूमने को राजान ।।
चलते चलते विशिष्ट कुटिया, लखकर आया मन में ध्यान ।
अन्दर जाकर प्यास बुझालें बच जायेंगे सबके प्राण ।।
दोहा :— अन्दर आते भूप को, लख आये ऋषिराय ।
मान सहित बैठा वहाँ, सबको दिया जिमाय ।।
देख व्यवस्था नरपति सोचे, ऐसी क्या है वस्तु सही ।।चाहे०।।१।।
कर अन्वेषण पता किया, इक कामधेनु है इनके पास ।
अच्छा हो ले जाऊं राज में, यह तो शोभे मुझ आवास ।।
वशिष्ठ ऋषि से करी याचना, यह कपिला मुझको दीजे ।
वशिष्ठ कहे यह खड़ी सामने, जाना चाहे ले लीजे ।।
दोहा :— ले जाने की चाह से, कामधेनु के पास ।
आकर वीर खड़े रहे, धर कर मन में आश ।।
बाँध इसे ले चलो साथ में, देर जरा भी लगे नहीं ।।चाहे०।।२।।
उस ही क्षण वहाँ वीर अनेकों, राज सैन्य से युद्ध करे ।
विश्वामित्र की सेना हारी, सैनिक सैंकड़ों वहाँ मरे ।।
बचे हुए सैनिक सब भागे, नहीं एक भी वहाँ रुका ।
भूपति आगे कही हकीकत, सेनापति ने शीश झुका ।।
दोहा :— नरपति वहाँ की शक्ति को, समझ गया निज स्थान ।
सोचे इनकी शक्ति से, नहीं भूप बलवान ।।
अतः ऋषि की शक्ति पाऊँ, राज पाट को त्याग सही ।।चाहे०।।३।।
तजकर गद्दी गये हिमालय, तप कठोर लिया अपनाई ।
तपः प्रभाव से सुर सुरेन्द्र भी, रहे चित्त में घबराई ।।
कभी स्वर्ग का राज्य छीन ले, यह शंका चित्त में लाई ।

इन्द्र विघ्न करता है तप में, ऋषि को मोह में उलझाई ।।
दोहा :— बार बार तप से गिरे, फिर भी तजे न टेक ।
बहुत वर्ष तक घिर रही, करते तप को नेक ।।
कठिन तपस्या कर देवों से, ब्रह्म ऋषि की पदवी लही ।।चाहे०।।४।।
विश्वामित्र हो गये ब्रह्म ऋषि, पर वशिष्ठ राजर्षि कहे ।
इसीलिए ही विश्वामित्रजी, वशिष्ठ ऋषि पर खिन्न रहे ।।
एक दिन अयोध्या राज सभा में, राजर्षि कह बतलाये ।
सुनकर शब्द विश्वामित्रजी, गहरा क्रोध मन में लाये ।।
दोहा :— कई तरह से हानि की, पर वशिष्ठ खामोश ।
नहीं बदले की भावना, नहीं है दिल में रोष ।।
इतना करने पर भी देखो, उनके मन में शांति नहीं ।।चाहे०।।५।।
शस्त्र उठाकर चले रोष में, वशिष्ठ कुटिया पर आये ।
मौका देखकर वशिष्ठ ऋषि को, खत्म करूं मन में लाये ।।
एकान्त वृक्ष की ओट छिपे, नहीं पता कोई भी वहां पाये ।
देखो क्रोध की लहर व्यक्ति को, कहाँ से कहाँ पर ले जाये ।।
दोहा :— शर्वरी में हो रहा, गहरा इन्दु प्रकाश ।
आकर तभी अरण्य में, शान्त चित्त हुल्लास ।।
अरूंधनी ने पति सामने, अपने दिल की बात कही ।।चाहे०।।६।।
ऐसी स्वच्छ चन्द्रिका जैसा, निर्मल निश्चल तप किसका ।
महापुरुष का नाम बतादो, इस पृथ्वी पर हो जिसका ।।
वशिष्ठ बोले हैं जग जाहिर, तुझे पता नहीं है उसका ।
प्रकाशमान इस प्रकाश से भी, अति निर्मल है तप जिसका ।।
दोहा :— विश्वामित्र शुभ नाम है, उज्ज्वल तपसी जान ।
कहाँ तलक यश गा कहूँ, है सद्‌गुण की खान ।।
यह सुनते ही विश्वामित्र का, क्रोध शांत हो गया वहीं ।।चाहे।।७।।
डाल शस्त्र को चले त्वरित आ, वशिष्ठ चरणों मांहि पड़े ।
उठा उन्हें फिर लगा गले से, बोले ब्रह्मऋषि आप बड़े ।।
वशिष्ठ ऋषि के मुख से निकला, तभी ब्रह्मऋषि हुए खरे ।
क्रोध मान था तब तक उनको, मिली न पदवी चाह करे ।।
दोहा :— 'प्राज्ञ' कृपा 'सोहन' मुनि, कहे यह बारम्बार ।
कषाय विष निकले बिना, कभी न हो उद्धार ।।
समझो इसको काले नाग सम, जावो कभी नजदीक नहीं ।।चाहे०।।८।।
दोहा :— दो हजार चौंतीस का, माघ मास श्रीकार ।
शुक्रवार बुद तीज को, गोविन्दगढ़ सुखकार ।।

———

३ अनुसूया का सतीत्व

(तर्ज—लावणी खड़ी)

कभी गर्व यह करो न मन में, मुझसे जग में कौन बड़ा।
ऐसा सोचना सही नहीं है, एक-एक से एक बड़ा ।।टेर।।

एक वक्त नारद ऋषि चलकर, ब्रह्माजी के पहुँचे स्थान।
ब्रह्माणी ने कहा ऋषि से, मुझ से शील में कौन महान् ।।
इस जगति पर पतिव्रता की, मैं ही रखती पूरी शान।
नारद बोले अनुसूया सी, पतिव्रता नहीं सुनी महान् ।।
कहकर नारद हुए रवाना, विष्णु से मिल जाऊँ जरा ।।१।।कभी।।

देखा वहाँ पर भी लक्ष्मीजी, पूरी मद में छाय रही।
मुझसी कोई नहीं जगत् में, पतिव्रता ये सुना रही ।।
पति परायण पतिवल्लभा, मुझ सानी की कोई नहीं।
सुनकर नारद सोचे मन में, यह भी ढोल निज पीट रही ।।
कहे नारदजी अनुसूया ही, नारी जग में सबसे परा ।।२।।कभी।।

वहाँ से उड़ कैलाश गये, वहाँ बैठी उमा बात करे।
वह भी अपनी करे बड़ाई, मुझ से बढ़कर कौन सिरे ।।
नारी जाति में पतिव्रत पालक, मेरी समता कौन करे।
नारद बोले अनुसूया से, बढ़कर नारी नहीं सिरे ।।
कहकर नारद गये गगन में, विमान हिमालय पर उतरा ।।३।।कभी।।

तीनों नारियाँ निज पतियों से, ईर्ष्या में भरकर बोलीं।
अनुसूया को अपने धर्म से, भ्रष्ट करो मुख से खोली ।।
सुनकर तीनों देव वहाँ, अनुसूया की शक्ति तोली।
जान गये वे सच्ची नारी, नहीं धर्म में है पोली ।।
देवों द्वारा तिरिया हठ वह, टारे से भी नहीं टरा ।।४।।कभी।।

तीनों देवता हुए रवाना, मिल आपस में बात करें।
क्या शक्ति है अभी डिगादें, तीन शक्तियां मिली सिरे ।।

संन्यासी का वेश बनाकर, तीनों ही आ द्वार खड़े ।
आवाज लगाई भूखे साधू, द्वार खड़े हैं आ तेरे ।।
पति सेवा में लगी हुई थी, तभी कान में शब्द पड़ा ।।५।।कभी।।

देने लगी आटा तब बोले, गरम-गरम भोजन खायें ।
कई दिनों के भूखे हैं हम, भोजन अच्छा यहाँ पायें ।।
सुनकर बोली आप निपट कर, पुनः लौट घर को आयें ।
जितने में हो जाये भोजन, आनन्द से खाना खायें ।।
लौट पुनः तीनों ही देखें, भोजन गरमागरम पड़ा ।।६।।कभी।।

भोजन भाणा रखते ही कहे, अपने हाथ से जीमावो ।
सती समझ कर बोली ऐसे, तीनों बालक हो जावो ।।
शिशु हो गये तीनों देवता, रख पालणिये झुलावो ।
सती कहे अब आप सभी सानन्द यहाँ पर सो जावो ।।
तीनों नारियें बाट जो रहीं, नहीं आने से दुःख बढ़ा ।।७।।कभी।।

जाकर खोजें क्या कारण है, तीनों मार्ग में आन मिलीं ।
एक-एक से पूछ रही है, कैसे आप हो रही ढीली ।।
क्यों चेहरे पर सुस्ती छाई, एक-एक को बता रही ।
सोचे हम तीनों ही रोगी, एक मर्ज के आज सही ।।
इतने में नारदजी आ कहे, अहो ! कौनसा काम अड़ा ।।८।।कभी।।

आज आप मिल कहाँ जा रहीं, तीनों ही संग के माँही ।
पति विना तुम कभी अकेली, कहीं घूमती हो नांही ।।
देख आपको आश्चर्य होता, ऐसी क्या आफत आई ।
यदि कहने की होवे बात तो, कह दो अपनी सही-सही ।।
तीनों बोलीं पति हमारे, नहीं आये हैं खोज करा ।।९।।कभी।।

सुनकर नारद बोले ऐसे, कहाँ ढूंढने जावोगी ।
मैं जानूं अनुसूया के वहीं, खोजो पति तुम पावोगी ।।
जाकर आया अभी वहाँ मैं, बच्चे तीनों झूल रहे ।
सम्भव है तीनों वे होंगे, देखे वैसे भाव कहे ।।
बात सुनो तीनों यों सोचें, नारद कहे वृत्तान्त खरा ।।१०।।कभी।।

चली वहाँ से आश्रम में आ, अनुसूया से बात कही ।
स्वागत करके सती कहे, यहाँ पति आपके आये नहीं ।।
संन्यासी आये थे यहाँ पर, उनने मुझसे बात कही ।
खाना खिलायें अपने हाथ से, तभी ये बालक हुए यहीं ।।
यदि इनमें हों पति आपके, ले लो नहीं इन्कार करां ।।११।।कभी।।

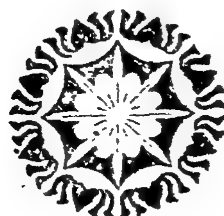
तीनों बालक लख तीनों ही, मन में अति विस्मय पाई ।
किस तरह पिछाने कौन पति है, इन तीनों बच्चों मांही ।।
फिर भी अंदाजे से पति लख, उठा लिया करके मांही ।
कहे सती से निज रूपों में, कैसे आयेंगे बाई ।।
अनुसूया ने पानी छांटकर, बना दिया है रूप खरा ।।१२।।कभी।।

ब्रह्माणी देखे मैंने तो, पति मिस विष्णु उठा लिया ।
रंभा शंभु को उमा ब्रह्म को, पति रूप स्वीकार किया ।।
अतः सभी शर्मिन्दा होकर, अनुसूया के पैर छिया ।
सच्ची सती है तू ही जग में, हमने मिथ्या गर्व किया ।।
नारदजी ने कही बात पर, हुआ नहीं विश्वास खरा ।।१३।।कभी।।

इतने दिन हम यह समझती, हमसे बढ़कर कौन महान् ।
अतः हमारे दिल पर छा रहा, सदा सर्वदा यह अभिमान ।।
भान हो गया आज हमें यह, था निश्चय में झूठा मान ।
अब समझी हम इस जगती पर, एक-एक से एक महान् ।।
आज आपसे शिक्षा पाई, कभी नहीं अभिमान करां ।।१४।।कभी।।

माफी मांग निज पति संग ले, अपने-अपने स्थान गई ।
कभी गर्व मत करना दिल में, सुनकर यह उपदेश सही ।।
कभी यहाँ थी ऐसी सतियाँ, आकर देवियाँ चरण गही ।
गुण गाती थीं युक्त कंठ से, धन जननी हो धन्य मही ।।
पतन हो गया कितना यहाँ अब, आँख खोलकर देखो जरा ।।१५।।कभी।।

'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, कथा भागवत में आई ।
जैसी देखी वैसी ही यहाँ, जोड़ लावणी में गाई ।।
कम ज्यादा का मिथ्या दुष्कृत, दूँ मैं इष्ट की साख करी ।
दो हजार चौंतीस फागण वुद, ग्यारस रवि दिन शुद्ध घड़ी ।।
जस नगर में ठाणा पाँच से, आये आनन्द पाया वड़ा ।।१६।।कभी।।



४ | समय का मूल्य

(तर्ज—लावणी खड़ी)

महा कीमती समय जा रहा, पल-पल करके अहो सुजान ।
कितना इसको व्यर्थ खो दिया, कुछ तो करलो इस पर ध्यान ।।टेर।।

ज्ञानचन्द था सेठ जिन्हों के, घर में सरला नामा नार ।
प्रवल पुण्य के योग सेठ के, चलता है अच्छा व्यापार ।।
ज्यों-ज्यों लाभ बढ़े त्यों-त्यों ही, सेठ हृदय से हर्ष अपार ।
नये-नये आवास विभूषण, बना रहा है सुन्दराकार ।।
नगर मांहि विख्यात हो गया, दिन-दिन बढ़े सेठ की शान ।।१।।

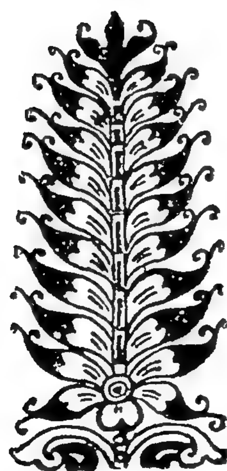
प्रतिवर्ष लेखा-जोखा कर, देखे कितनी घर के आय ।
गिन-गिन करके लाख मोहरें, फूला दिल में नहीं समाय ।।
सारी मोहरें तीन लाख लख, झूम रहा है मन के माय ।
सोच रहा यों मेरे सम तो, नहीं नगर में कोई दिखलाय ।।
नित्य नये पुल बांध रहा है, कोटिपति मैं बनूं महान् ।।२।।

इतने में क्या देखा उसने, यम के दूत खड़े आकर ।
कहे चलो आ गया वक्त, क्यों फूल रहा पैसे पाकर ।।
देर करो मत चलो साथ में, बोला श्रेष्ठी घबराकर ।
तीन दिनों का समय दीजिए, लाख मोहरें तुम लेकर ।।
दूत कहे क्या कहता ऐसे, नहीं लांच ले देते प्राण ।।३।।

दोय लक्ष मोहरें लेकर के, एक दिन की छुट्टी देना ।
दूत कहे नहीं दिन मिलता है, चाहे जितना धन देना ।।
तीन लक्ष लो, एक पलक दो, कहे सेठ भर कर नैना ।
नहीं मिले तब सेठ कहे यों, कर दूं जग को मैं सैना ।।
आज्ञा पाकर बोला सेठ यों, सत्य कहूं सो लेना मान ।।४।।

सुन लेना इन्सान ध्यान से, कहता हूँ मैं वीतक सार।
तीन लाख में मिला न मुझको, पल भर का भी समय लिगार ।।
दौलत से है वक्त कीमती, सदा रहो जग में हुशियार।
धर्म साधना करके पालो, जीवन का यह उत्तम सार ।।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, क्षण-क्षण का नित रखिये ध्यान ।।५।।

आचार्य प्रवर श्री हस्तिमलजी, ठाणे आठ से विचरत आय।
पांच ठाणा से प्रवर्तक श्री भी, विराज रहे मेड़ता मांय ।।
सौहार्दपूर्ण हो गया मिलन, और छाया संघ में हर्ष सवाय।
दो हजार चौंतीस होलिका, तेरह ठाणे रहे सुख पाय ।।
श्री संघ ने धर्म-ध्यान कर, पाया खूब ही सम्यक्ज्ञान ।।६।।



५ सेवा का फल

(तर्ज—अष्टापदी नेमजी)

सेवा फल निष्फल नहीं जावे, कथा महाभारत बतलावे ।।टेर।।
कृष्ण की बहिन सुभद्रा बाई, अर्जुन को दीनी परणाई ।
पांडव कुल उत्तम जग मांई, आनन्द से दिवस रहे जाई ।।

दोहा— सदा सुभद्रा यों कहे, कृष्ण हृदय के मांय ।
द्रौपदी पलड़ा मुझसे भारी, सभी तरह दिखलाय ।।
कृष्ण सुन ऐसे फरमावे ।।सेवा।।१।।

हँसकर बोले यों वाणी, आतम सम जाणूं सब प्राणी ।
करूं मैं रक्षा हित आनी, फरक मत मन मांही लानी ।।

दोहा— समझाकर के आगये, नगरी द्वारिका मांय ।
मोद प्रमोद करे मन-वाया, पुण्य साथ में लाय ।।
पुरुषोत्तम सबमें कहलावे ।।सेवा।।२।।

एक दिन बहन घर आये, महल में द्रौपदी लख पाये ।
भ्रात मिल सुभद्रा हरषाये, बना पकवान जीमाये ।।

दोहा— केई चीजें थाल में, पास बैठ जिमाय ।
रुचि पूर्वक जीम श्रीपति, कर मुख साफ कराय ।।
आसन पर ऊंचे बैठावे ।।सेवा।।३।।

पड़े फल दृष्टि में आवे, चाकू इक उठा वहाँ लावे ।
फलों को काटना चावे, अंगुली पर चीरा लग जावे ।।

दोहा— रक्त धार बह नीसरी, हुआ दर्द असराल ।
पास दासी ला पानी सींचे, फिर भी हाल बेहाल ।।
खून तो बहता ही जावे ।।सेवा।।४।।

कृष्ण कहे पट्टी ले आओ, वक्त मत ज्यादा वितावो ।
सुभद्रा कपड़ा मंगवावो, दर्द अब मेरा मिटवावो ।।

दोहा— सुभद्रा और दास सब, महल के मध्य में जाय ।
फटा पुराना वस्त्र मिला नहीं, सभी रहे घवराय ।।
द्रौपदी सुनकर वहाँ आवे ।।सेवा।।५।।

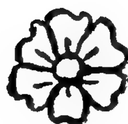
रेशमी चीर फाड़ लीना, वस्त्र ला सद्य बांध दीना ।
शीघ्र ही काम वहाँ कीना, कृष्ण मन परमानन्द चीना ।।

दोहा— चीर कीमती फाड़ते, कीना नहीं विचार ।
उसका बदला दिया कृष्ण ने, कौरव सभा मंझार ।।
दुर्योधन चीर खिचवावे ।।सेवा।।६।।

अन्त नहीं चीर का आया, दु:शासन हार शर्माया ।
सेवा फल द्रौपदी पाया, ध्यान से सुनलो सव भाया ।।

दोहा— 'प्राज्ञ' कृपा 'सोहन' मुनि कहे, यह वारम्वार ।
सेवा करलो तन मन धन से, भव-भव में सुखकार ।।
सेवा फल मेवा मिल जावे ।।सेवा।।७।।

दोहा— दो हजार चौंतीस का, पादु कलां सुखकार ।
चैत वुदि दशमी रवि, वरते मंगलाचार ।।



६ सहयोग जीवन है

(तर्ज—लावणी खड़ी)

सबसे हिलमिल रहो सज्जनो, यह अवसर नहीं आने का ।
वक्त गया सो गया लौटकर, पुनः हाथ नहीं आने का ।।टेर।।

श्रेष्ठी सोमदत्त ने अपनी, कोठी नई बनाई है ।
फर्नीचर ला कई तरह का, सुन्दर उसे सजाई है ।।
रहे मोद में उसके अन्दर, खुशियें रहा मनाई हैं ।
मोटर, कारें, साइकिलें भी, लाकर के छुड़वाई हैं ।।
सोचे इतना धन है पास में, गर्व कोटिपति होने का ।।सबसे।।१।।

कोठी बाहर खड़ा सामने, हवा ले रहा मन्द सुगन्ध ।
बादल छा रहे गहरे गगन में, छींटों की है भीनी गंध ।।
उस समय एक बूढ़ा चल आया, तन से थका हुआ अथाह ।
लेलूं यहाँ विश्राम सोचकर, भार उतारा करके चाह ।।
बोला सेठ क्या धर्मशाला है, रस्ता पकड़ो जाने का ।।सबसे।।२।।

बूढ़ा कहे मैं थका हुआ हूँ, अतः रुका कुछ लूं विश्राम ।
सेठ कहे यहाँ से उठ जावो, आगे नहीं करना आराम ।।
यदि ठहरे तो चौकीदार को, रखना होगा यहाँ रखवाल ।
क्या मालूम तुम कब ले जावो, यहाँ से मेरे घर का माल ।।
यह सुनते ही त्वरित वृद्ध ने, विचार कर लिया जाने का ।।सबसे।।३।।

मारग मांहि कष्ट उठाया, वर्षा से अति घबराया ।
ज्यों त्यों करके मार्ग पार कर, मुश्किल से घर पर आया ।।
कुछ दिनों बाद ले अश्व सोमदत्त, वन में घूमने को आया ।
मौसम था वह शीतकाल का, गगन मांहि बादल छाया ।।
एकदम सारा पासा पलटा, मौसम वर्षा आने का ।।सबसे।।४।।

जाने के सब मार्ग रुके और, पानी चारों तरफ वहे ।
अश्व छूट भग गया हाथ से, जाके सेठ अब किसे कहे ।।
काल व्याल सम रात अँधेरी, सभी दिशाओं में छाई ।
टिमटिमा रहा दीपक जिसमें, एक झोंपरी दिखलाई ।।
सत्वर चलकर आये सेठ वहाँ, विचार हुआ रुक जाने का ।।सवसे।।५।।

देते ही आवाज अन्दर से, युवक निकल करके आया ।
बड़े प्रेम से मीठे शब्दयुत, घर के अन्दर ले आया ।।
सूखे कपड़े देकर तन से, गीले कपड़े उतराया ।
रोटी और चटनी दे करके, भाव भक्ति से जीमाया ।।
घर समझो यह सभी आपका, काम कहो जो चाहने का ।।सवसे।।६।।

आपस में कुछ बातचीत कर, श्रेष्ठी ने निज वात कही ।
अश्व छूटकर गया हाथ से, उसका कहीं पर पता नहीं ।।
घबराओ मत लाकर दूँगा, होगा जंगल मांय कहीं ।
आसपास की भूमि सारी, मुझ नजरों से छिपी नहीं ।।
युवक कहे तुम थके हुए हो, वक्त हो गया सोने का ।।सवसे।।७।।

अश्व ढूंढ़ ले आया रात में, खान पान उसको दीना ।
हुआ सवेरा सेठ सामने, अश्व लाय हाजिर कीना ।।
इतनी खातिर देख सेठ का, दिल गद्गद हो गया भीना ।
देखूँ कौन स्वामी है यहाँ का, जिसने यह स्वागत कीना ।।
सोचे मेरा मन चाहता है, दर्शन उनके पाने का ।।सवसे।।८।।

इस युवक को शिक्षा देकर, कैसा योग्य वनाया है ।
अपरिचित की इतनी खातिरी, करना इसे सिखाया है ।।
बुला पास उस युवक सामने, सेठ भाव दर्शाया है ।
चलूं साथ तुम पिता दर्श को, यह मेरे मन आया है ।।
युवक कहे मैं देखूं पहले, फिर कहूँ आपको चलने का ।।सवसे।।९।।

वात कही आ पिता सामने, सेठ यहाँ आना चावे ।
पूरा परिचय पाकर उसका, वृद्ध हृदय में यों लावे ।।
आते ही वह देख मुझे, पहचान अति मन शरमाये ।
इससे तो नहीं मिलना अच्छा, सोच पुत्र को समझावे ।।
जाकर कहदो सेठ साहब को, अवसर नहीं है मिलने का ।।सवसे।।१०।।

सेठ कहे मैं मिलकर जाऊँ, चाहे जितना समय लगे ।
दीदार देख लूं पुण्यवान का, पुण्यवान से भाग्य जगे ।।
नहिं माना तव बोला बूढ़ा, ले आओ उनको यहाँ ही ।
चलो आप अब मेरे संग में, पिता पास के घर मांही ।।
सुनी सेठ दिल हर्षित होकर, चला उमंग है मिलने का ।।सवसे।।११।।

सेठ पास में आकर देखा, मन में अति विस्मय पाया ।
यह वृद्ध तो वही पुरुष है, एक दिन कोठी पर आया ।।
नहीं ठहरने दिया मैं इनको, कटुक शब्द कह उठवाया ।
उस ही क्षण हो गया रवाना, वर्षा से यह दुःख पाया ।।
उस दिन मैंने वहुत बुरा, कर दिया काम कल्पाने का ।।सवसे।।१२।।

कैसा मेरा स्वागत कोना, कितनी कीनी सार संभार ।
समय समय पर जो चाहे सो, लाकर रक्खी वस्तु सार ।।
मैंने कीना वैसा करता, मेरे साथ में यह व्यवहार ।
क्या गति होती मर जाता मैं, सह नहीं सकता ठंडी ठार ।।
प्राणीमात्र पर दया भाव हो, तव ही फल है जीने का ।।सवसे।।१३।।

कहाँ यह मानव ? कहाँ मैं दानव ? ऐसे मन में सोच रहा ।
पड़ा चरण में सेठ कृषक के, क्षमा याचना मांग रहा ।।
वृद्ध कहे नहीं दोप तुम्हारा, धन मद से उन्मत्त रहा ।
उसमें तुझको ध्यान रहा नहीं, कौन कष्ट क्या पाय रहा ।।
ध्यान करो कुछ नरतन पाकर, यह अवसर नहीं आने का ।।सवसे।।१४।।

अपनी गलती मान सेठजी, निज भविष्य का करे विचार ।
वोला अव मैं कभी न कोई, भूल करूँगा कहूँ पुकार ।।
शिक्षा मुझको मिली आपसे, याद रखूंगा मैं हर वार ।
गंवार समझता जिनको अव तक, वे तो निकले समझदार ।।
भूल करी मैं मूरख वनकर, कव अवसर वह आने का ।।सवसे।।१५।।

क्या विगड़ता मेरे स्थान का, अगर वहाँ करते विश्राम ।
एक दिवस इन सव साधन को, तज जाऊँगा मैं परधाम ।।
किन्तु मूर्ख वन ममत्व मांहि, उलझ गया होकर वेभान ।
आज आपके सद् व्यवहार से, आया मेरे दिल में ज्ञान ।।
घर आकर सोचे क्यों आया, वक्त आज पछताने का ।।सवसे।।१६।।

उस दिन से वह समझा मन में, जितना अच्छा करलूं काम ।
दीन दुःखी की सेवा मांहि, खरचूं जितना अपने दाम ।।
नहीं साथ जावेगा मेरे, शेप रहेगा पड़ा तमाम ।
करे काम सुकृत का हरदम, नहीं चाहता किंचित् नाम ।।
गुप्त तरीके सेवा लाभ ले, सार गिने धन पाने का ।।सवसे।।१७।।

धन पाकर मत गर्व करो, कुछ करलो जीवन में शुभ काम ।
कहीं आप धन दास कहाकर, हो जावो जग में वदनाम ।।
जिनने अपना तन धन देकर, वना लिया है जग में नाम ।
चला गया भौतिक तन उसका, फिर भी यश गा रहे तमाम ।।
'आज' अमादे 'मोहन' मुनि कहे, यह अवसर कर जाने का ।।सवसे।।१८।।

७ एक घड़ी राम की

(तर्ज—लावणी खड़ी)

ज्ञानी गुरु आकर चेताते, सुनलो भैया देकर कान ।
साठ घड़ी है रात दिवस की, एक घड़ी तो करलो ध्यान ।।टेर।।

महि मांडनपुर नगर मनोहर, देखत जनमन हरसाये,
नीति निपुण 'रणकौशल' भूपति, प्रजाजनों के मनभाये ।
एक समय भूपति के आगे, सभी सभासद यों कहते,
शौर्यशाली ना हुए आप सम, आन बान पर जो मरते ।।

शेर— सुन पराक्रम नरपति, फूला समाता है नहीं,
इतने में इक दूत आया, सूचना लेकर वहीं ।
जय विजय हो आपकी, राजन जरा सुन जाइये,
संदेश मेरे स्वामी का है, आधीनता अपनाइये ।।

छोटी कड़ी—सुन वचन दूत के, महिपति जोश भराया,
कर लाल नेत्र यों, मुख से यह दरसाया ।
है कौन तेरा यह, स्वामी हुक्म फरमाया,
जो स्वयं मृत्यु को, दे संदेश बुलाया ।।
कह देवा जाकर महिपति को, क्यों खोता है, नाहक प्राण ।।साठ० १।।

'रण कौशल' रण में आने से, किंचित भी नहीं भय खाता,
गर्वोन्मत्त होकर के भूपति, कोतवाल को बुलवाता ।
काला मुख कर खर बैठा दो, इसे हुक्म यों फरमाता,
अवध दूत है नीति शास्त्र में, यह कह बाहर निकलाता ।

शेर— आ गया निज देश में, संदेश लेकर दुःख भरा,
पहुंचा सभा के बीच में, नृप हाल अब दीजे जरा ।
जोश में अपमान मेरा, नाथ उसने कर दिया,
बदला अगर लोगे नहीं, धिक्कार है तेरा जिया ।।

छोटी कड़ी—अद्‌भुत लखकर स्वांग, भूपति बोला,
दुश्मन ने अपनी मृत्यु, समझ मुँह खोला ।
तब सेनापति को, आज्ञा दीनी सत्वर,
ले पूर्ण सैन्य बल, उसे पकड़लो चलकर ।
नहीं सूचना दी शत्रु को, चले भूपति रखने शान ।।साठ० २।।

सुन रण कौशल चित्त में, चमका नष्ट-भ्रष्ट होवेगा राज,
चिन्तित होकर सोचे मन में, मुझ हाथों से हुआ अकाज ।
कर मंत्री से सलाह पुत्र के, सिर पर रख दीना है ताज,
छोड़ भूमि धनधाम खजाना, चले गये वन में महाराज ।।

शेर— पर्वतों की श्रेणियों में, घूमते त्रय दिन भये,
प्यास बुभुक्षित भूपति तब, वृक्ष तल सो गये ।
प्रातः सूर्योदय समय, सुन्दर शहर दिखलाइया,
चल वहां से शहर में, इक सेठ दर पर आइया।।

छोटी कड़ी—देखा शाह ने भव्याकृति नर आते,
झट उठ दिया सम्मान पास बैठाते ।
लख सूरत सेठ अब नृप से यों फरमाते,
भोजन करिए सद्य करे फिर वातें ।
प्रेमयुक्त भोजन करवा के, ला बैठाया निज दूकान ।।साठ० ३।

परिचय लेने हेतु सेठ ने, सरल भाव से पूछा नाम,
कैसे आना हुआ आपका, फरमादें जो होवे काम ।
श्रवण करी भपति के चित्त में, याद आ गया निज आगार,
उत्तर दे न सका वह कुछ भी, निकले अश्रु अविरल धार ।।

शेर— ज्ञात हो गया सेठ को, पुंगव पुरुष पुण्यवान है,
मारे विपत्ति आ गये, यह रखने अपनी शान है ।
परिचय मैंने पा लिया, तज दीजिए संताप को,
भवन भूषण हैं समर्पण, आज से ये आपको ।।

छोटी कड़ी—सुन वचन सेठ के भूपति यों दरसावे,
राजपाट दिया छोड़ नहीं कुछ चावे ।
जब कभी काम हो हुक्म मुझे फरमावें,
यों निज परिचय दे नरपति आगे जावें ।।
जाते मार्ग में चोर पल्ली का, स्वामी बना वह पाकर मान ।।साठ०४।

दोहा— सेना लेकर जोश में, चाल वेश भूपाल ।
धनद नमाते आ गया, सीमा पर तत्काल ।।

महि मंडनपुर को आ घेरा, शत्रु दल लख घबराये,
राज मंत्री गण माल वेश से, संधि करके सुख पाये ।
नमा भूप को चले वहां से, सुन्दरपुर आ घेर लिया,
शत्रु दल लख सुन्दरेश ने, युद्ध करने का ठान लिया ।।

शेर— आ गये रण भूमि में, संग्राम चालू हो गया,
लख वीरता मालवेश की, सुन्दरेश घबरा गया ।
उद्घोषणा की नगर में, सब लोग यहाँ से जाइये,
जीत होने पर बुलाऊँ, तब सभी यहाँ आइये ।।

छोटी कड़ी—कोटी ध्वज एक सेठ सोच यों मन में,
भरे तीन सौ गाड़े सार सब धन में ।।
जाते मार्ग में साठ ऊँट मिले वन में ।
रोको गाडियें कब्जा हमारा धन में,
सुनते सेठ का हृदय टूट गया, तन से जाने लगे हैं प्राण ।।साठ० ५।।

दोहा— सेठ सामने आ गया, रण कौशल तिणवार ।
देखा तो पाया उसे, प्राण दान दातार ।।

तर्ज—(मांड मारवाड़ी)

हे अन्नदाता म्हारा, प्राण पियारा, जाणो हो के नांय ।।टेर।।

दुःख की विरिया साथ दियो थो, दीना प्राण बचाय,
किमकर भूलूं अन्तर्यामी, उण विरिया री सहाय ।।हो।।

आते समय में कोल कियो थो, दुख की विरिया मांय,
याद करो हाजिर हो जास्यूं, तावेदारी मांय ।।हो।।

दोहा— आंखें खोली सेठ ने, लखा भव्य दीदार ।
मीठे शब्दों में कहा, सुनो आप सरदार ।।

तर्ज—(राधेश्याम रामायण)

इससे बढ़कर दुख क्या होगा, प्राण मेरे अब जाते हैं ।
करो कष्ट से मुक्त मुझे यदि, दया आप दिखलाते हैं ।। १ ।।

चलो सेठ अब चिन्ता छोड़ो, जहाँ तक हूँ मैं तेरे साथ ।
छीन सकेगा कोई न धन को, लगा सकेगा न कोई हाथ ।। २ ।।

सेठ हुआ निश्चिंत हुक्म पा, गाडे सब हकने लागे ।
खबरदार सब रुके रहो कह, गुणसठ ऊँट हो गये आगे ।। ३ ।।

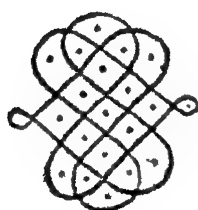
(पुन: खड़ी वं लावणी)

कौन कह रहा यहाँ गाडिये, चलने की निज मुख से बात ।
अभी समझ लो शीश कटेंगे, कौन आय देता है साथ ।।
गाडीवान सब नीचे उतरो, अगर तुम्हें प्यारी है जान ।
अल्प कथन में बहुत समझ लो, कहा हमारा लेओ मान ।।

शेर—- देखकर यह माजरा, अब भूप यों कहने लगा ।
देखना तलवार मेरी, कोई नहीं होगा सगा ।।
मत लूटना कोई इसे, आगे को जाने दीजिए ।
प्राण रक्षक है मेरा यह, चल इन्हें पहुँचाइये ।।

छोटी कड़ी—सब मिल के सेठ को, इच्छित स्थान पहुँचाया ।
हुआ एक पक्ष में, तन धन सेठ बचाया ।।
यों साठ घड़ी में, अपनी घड़ी बनाया ।
यहाँ वहाँ सर्वत्र, वही सुख पाया ।।
गुरुदेव के मुख से सुनकर, मुनि 'सोहन' ने कीना गान ।।साठ० ६।।

दोहा— दो हजार दस साल में, नगर भैरूंदा मांय ।
पोस सुदी एकादशी, यह संबंध बनाय ।।



८ | जीवन : घूमता चक्र

(तर्ज—द्रोण की)

कर्मचक्र फिर जाय पता नहीं भाई, महाराज, वक्त कब क्या आ जावे जी ।
अत: सम्पत्ति पाकर मन में मत गर्वावेजी ।।टेर।।

एक हरिपुर में था सेठ गजाधर नामी, महा. पूंजी कोड़ों की घर में जी ।
सब सेठों में शिरोमणि था, इसी नगर में जी ।।
दास दासी नौकर थे जिनके, गहरे महा. संतरी पहरा देवे जी ।
अन्दर आना चाहे रजा वो सेठ से लेवे जी ।।
सम्पत्ति में गया फूल सुने नहीं किसकी, महा. कभी आ दीन सुनावेजी ।।अत:।।१।।

वहीं सेठ एक दानमल भी रहता, महा. पास में नहीं रही पाई जी ।
करे खूब उपाय नहीं होय कमाई जी ।।
खानपान का साधन नहीं है घर में, महा. दु:ख से दिवस वितावेजी ।
एक दिन बोली नार आप कुछ ध्यान दिरावेजी ।।
यहाँ पर रहते सेठ गजाधर नामी, महा. कर्ज कुछ उनसे लावेजी ।।अत:।।२।।

यदि दो सौ रुपये जो मिल जावे, उनसे महा. काम अपना चल जावे जी ।
करो आप व्यापार लाभ उसमें हो जावेजी ।।
सुनकर सोचे क्या मैं उन्हें कहूँगा, महा. याचना कभी न कीनी जी ।
आज तलक मैं जाय कहीं नहीं उधार लीनीजी ।।
फिर भी वक्त की बात सोचकर जावे, महा. हवेली में चल आवे जी ।।अत:।।३।।

नहीं मिले सन्तरी द्वार पास में, इनको महा. भवन में सीधा आया जी ।
शैय्या पर बैठा सेठ देखकर क्रोध भराया जी ।।
कैसे यह आया बिना इजाजत यहाँ पे, महा. नमन कर हाल बताया जी ।
दे दो दो सौ रुपये यही आशा में लाया जी ।।
सुनकर के वृत्तान्त रोष में बोला, महा. दाम क्या मुफ्त में आवेजी ।।अत:।

दी आज्ञा, है कोई संतरी यहाँ पर, महा. धक्का दे बाहर निकालो जी ।
यहाँ आया है कंगाल नजर से दूरा टालोजी ।।
लाल नेत्र कर कहे सेठ यों सब से, महा. हराम की नौकरी खावो जी ।
नहीं रक्खो कुछ भी ध्यान बात में मस्त हो जावो जी ।।
सुनकर के दे धक्का सन्तरी उसको, महा. सीढ़ियों पर गिर जावेजी ।।अत:।।५।।

लगी चोट दिल मांही अति दुःख पाया, महा. नगर को आ दरसाया जी ।
नहीं जाना है अब किसी पास में यो बतलाया जी ।।
मजदूर जा रहे करने को मजदूरी, महा. बात उनसे कर लीनी जी ।
क्या-क्या करना काम वहाँ यह सब कह दीनी जी ।।
चलो संग में आप काम मिल जावे, महा. मजूरी त्वरित दिलावें जी ।।अत:।।६।।

कहे दानमल नहीं कुदाली घर में, महा. श्रमिक यों शब्द सुनावे जी ।
दे दूंगा एक मैं काम आपका सब बन जावे जी ।।
कीनी मजदूरी छः महिने तक उसने, महा. पास में पैसे आवेजी ।
उनसे किया व्यापार लाभ अच्छा हो जावे जी ।।
कुछ समय बाद ही विधि ने पलटा खाया, महा. द्रव्य से द्रव्य बढ़ावेजी ।।अत:।।७।।

हो गया कोटिपति चन्द समय के मांही महा. काम भी दिन दिन-दिन बढ़ताजी ।
शुभ कर्मों के योग मनोरथ सब ही फलता जी ।।
सेठ गजाधर दिन-दिन घटता जावे, महा. सम्पत्ति सब बिरलाई जी ।
हाट हवेली बाग बगीचे गये बिकाई जी ।।
टाइम पर भी खाने को नहीं मिलता, महा कर्म क्या नाच नचावे जी ।।अत:।।८।।

इनको सब चीजें दानमल ने लीनी, महा. वे ही नौकर रख लीने जी ।
अच्छा देकर वेतन उनको शिक्षित कीने जी ।।
आ जावे द्वार पर कोई मांगने वाला, महा. हाथ खाली नहीं जावेजी ।
रखना पूरा ध्यान सभी को यों समझावे जी ।।
करो सदा व्यवहार सभी से अच्छा, महा. वहाँ सब आदर पावेजी ।।अत:।।९।।

रहे सेठ भी ऋजु नम्र होकर के, महा. सभी से हिलमिल रहता जी ।
ना छोड़ी कुल की रीत, शान से इसमें बहता जी ।।
सेठ गजाधर महा दुःखी हो फिरता, महा. काम नहीं सम्मुख मोही जी ।
कौन सहायक बने वक्त जब गाढ़ी आई जी ।।
कहा किसी ने दानमल घर जावो, वहाँ से कुछ मिल जावे जी ।।अत:।।१०।।

जाने की इच्छा हुई किन्तु शंकाया, महा. करी अपमान कढ़ाया जी ।
कैसे जाकर कहूं भाव यह मन में लाया जी ।।
फिर भी दु:ख से दु:खित वहाँ चल आया, महा. हवेली अन्दर जावेजी ।
देख वहाँ का हाल हृदय में विस्मय पावे जी ।।
सुनकर सब से मीठे वचन विचारे, महा. पुण्य के फल यह खावेजी ।।अत:।।११।।

मिला सेठ से गया भवन के मांही, महा. खूब सम्मानित कीना जी ।
पकड़ हाथ वह उसे उच्च आसन दे दीना जी ।।
पूछी बात क्या हुक्म होया फरमावे, महा. गजाधर यों बतलाया जी ।
दो सौ रुपये मिले यही आशा ले आया जी ।।
दिये पांच सौ रुपये तत्क्षण उनको, महा. और आज्ञा फरमावेजी ।।अत:।।१२।।

बुला सन्तरी कहे स्थान पहुँचावो, महा. देख व्यवहार लजाया जी ।
गया सन्तरी साथ उसे घर तक पहुँचाया जी ।।
वापिस आकर सेठ सामने रोता, महा. सेठ लख विस्मय पाया जी ।
क्या कारण है रोने का तब वह बतलाया जी ।।
यही स्थान वह सेठ आपको यहाँ से, महा. धक्का देकर निकलावेजी ।।अत:।।१३।।

धक्का देने वाला दास भी मैं हूँ, महा. आप लख मुझ मन आया जी ।
कहाँ सेठ वह कहाँ आप यह आश्चर्य पाया जी ।।
कहे दानमल वह अमीर था पूरा, महा. पता उनको था नाहीं जी ।
कैसी गरीबी होती है दु:ख भुगते कांई जी ।।
मैं तो निकलकर आया गरीबी से ही, महा. अनुभव सभी करावे जी ।।अत:।।१४।।

दानमल पा सम्पत्ति दान में देता, महा. धर्म करणी नित करता जी ।
श्रावक व्रत आराध स्वर्ग मांही जा बसता जी ।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि यों कहता, महा. दर्प तज अज जिनराई जी ।
जिनसे हो कल्याण भाव शुद्ध लेवो बनाई जी ।।
जिन वचनों पर वे ही श्रद्धा जमावे, महा. जगत से तिरना चावेजी ।।अत:।।१५।।

ब्यावर कर चौमास जैतारण आये, महा. मास मिगसर सुखदाई जी ।
शुक्ला पंचमी बड़े ठाठ से वहीं मनाई जी ।।
वहाँ से किया विहार मेड़ता आये, महा. मार्ग में आनन्द पाया जी ।
स्थान-स्थान पर जिन वचनों का रंग बरसाया जी ।।
दो हजार तीस का वर्ष सदा मनभाया, महा. सभी दिल आनंद छावेजी ।।अत:।।१६।।

• •

९ | लोभ पाप का बाप

(तर्जः—द्रोण की)

चार कषाय दुनिया में अति दुःखदाई, महा. आरम भव भ्रमण बढ़ावे जी ।
इज्जत की होवे हानि, लोभ में जो फंस जावे जी ॥टेर॥

विप्र पुत्र एक काशी मांही आया, महा. पठन में चित्त लगाया जी ।
बारह वर्ष तक पढ़ा, नहीं वह आलस लाया जी ॥
हो गया दक्ष तब हुआ रवाना वहां से, महा. शहर अपने चल आया जी ।
मात पिता लख पुत्र हृदय में आनन्द पाया जी ॥
पाणिग्रहण कर लाया विदुषी कन्या, महा. मोद से दिवस बितावे जी ॥होवे॥१॥

इक दिवस दम्पति गोष्ठी ज्ञान की करते, महा. गर्व कर पति फरमावेजी ।
पूछो मन में शंका होय, उत्तर मिल जावेजी ॥
पढ़ा लिखा नहिं मुझसा कोई यहां पे, महा. वर्ष बारह बितायेजी ।
व्याकरण छंद अरु काव्य सभी कंठस्थ कराये जी ॥
नारी बोली मैं इतना तो नहीं जानूं, महा. प्रश्न पूछूं फरमावेजी ॥होवे॥२॥

जो भी गूढ़ से गूढ़ होय वह पूछो, महा. सद्य उत्तर तुम पावोजी ।
कौन पाप का बाप आप मुझको फरमावोजी ॥
सुनकर सोचे यह तो ध्यान नहिं आया, महा. सोच पोथे संभालेजी ।
समाधान नहीं मिला, सभी में दृष्टि डालेजी ॥
सोचे गुरु ने मुझको सभी पढ़ाया, महा. प्रश्न यह रहा भुलानेजी ॥होवे॥३॥

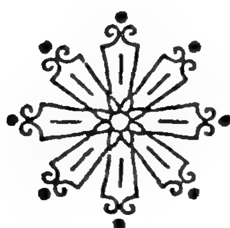
अतः प्रश्न का उत्तर लेने जाऊं, महा. रवाना हुआ निशा में जी ।
वाराणसी का मार्ग पकड़ चला पूर्व दिशा में जी ॥
चलते-चलते एक शहर में आया, परिश्रम से घबराया जी ।
अच्छा देखा भवन, वहीं पर आसन लगाया जी ॥
चन्द समय पश्चात् स्वामिनी आई, महा. बाहर में सोया दिखावेजी ॥होवे॥४॥

जगा उसे कहे कौन कहाँ से आये, महा. उत्तर दे भेद बतायाजी ।
जा रहा गुरु के पास अतः यहाँ पर मैं आया जी ।।
पूछे तुम हो कौन भवन यह किसका, महा. सुणी उत्तर यों दीना जी ।
है गणिका का आवास बात सुन दुःख वह कीना जी ।।
बोला पाप से कैसे अब छूटूंगा, महा. यहाँ पर अघ लिपटावेजी ।।होवे।।५।।

वैश्या बोली क्यों ऐसे घबराओ, महा. खर्च कुछ मुझसे ले जाओ जी ।
रक्खे पांच सौ रुपये सामने दुःख मत पावोजी ।।
कृपा करी अब भोजन यहाँ पर करना, महा. शीश वह रहा हिलाई जी ।
रहना पाप वहाँ भोजन कैसा दिया सुनाई जी ।।
वैश्या कहे यह ले लो पांच सौ रुपये, महा. देखकर मन ललचावे जी ।।होवे।।६।।

ले आई भोजन थाल सामने रक्खा, महा. भोजन तो मैं करवाऊंगी ।
कब आए अवसर ऐसा हाथ से आज जीमाऊंगी ।।
इन्कार हुआ तब दिये पांच सौ लाके, महा. मुख को चौड़ा कीना जी ।
रखकर मुख में ग्रास, वैश्या दो थप्पड़ दीनाजी ।।
पंडित देखता रहा बात यह कैसी, महा. वैश्या उसको समझावे जी ।।होवे।।७।।

जिसको कहते पाप उसी में उलझे, महा. लोभ वश सब कर लीनाजी ।
अतः पाप का बाप लोभ है, यों कह दीना जी ।।
वापिस आकर बात नार से कह दी, महा. अनर्थ लालच करवावेजी ।
त्यागो होय सुधार, पार भव से हो जावेजी ।।
'प्राज्ञ' शिष्य 'सोहन' मुनि यों कहता, महा. छोड़ लालच सुख पावेजी ।।होवे।।८।।



१० क्षणिक जिन्दगी : इतना अहं ?

(तर्ज—लावणी छोटी)

कहे सद्गुरु हित की वात हिया में धारो २ ।
तन धन यौवन को पाय तजो अहंकारो ।।टेर।।

संध्या राग सम समझ क्षणिक उजियारो ।
पीपल पान ज्यूं थिर नहीं है रहवारो ।।
कुन्जर कान सम स्वभाव चंचल यारो ।
जिम क्षण में होवे क्षीण विद्युत झबकारो ।।
मत करो गर्व तुम, ज्ञानी वचन विचारो ।।तन···।।१।।

ऐतिहासिक नगरी उज्जैनी नामी ।
धन जन से भरपूर नहीं है खामी ।।
है अरि मर्दन भूपाल वहाँ का स्वामी ।
प्रजाजनों के लिए सदा हित कामी ।।
दीन दुःखी की करे सार संभारो ।।तन···।।२।।

उस नगरी में नागदत्त व्यापारी ।
चलता अच्छा काम बड़ा धनधारी ।।
दिन-दिन बढ़ रही आय लक्ष्मी अनपारी ।
खूब हुआ जग नाम धाम सुखकारी ।।
किन्तु सेठ दिल तृष्णा दुःख अपारी ।।तन···।।३।।

नगर पति ने कोठी एक बनवाई ।
वह देख सेठ के दिल में ईर्ष्या छाई ।।
इससे भी सुन्दर कोठी नहीं बनाई ।
तब धन पाने का सार कहो है कांई ।।
इम सोची निश्चय मन में सेठ विचारो ।।तन···।।४।।

दूर-दूर से जा कारीगर लाया।
महीपति से भी अच्छा भवन बनाया।।
कह दीना सबको होवे काम सवाया।
दाम लगे नहीं सोचो कुछ भी भाया।।
होवे सुन्दराकार यह भवन हमारो।।तन.....।।५।।

चित्राम करण हित चित्रकार बुलवाये।
करो चित्र दिल खोल सेठ फरमाये।।
चाहे सो वस्तु मिले वहाँ से लावे।
नहीं खर्च का कुछ भय दिल में खावे।।
रहे सात पीड़ी तक रंग रोशन उजियारो।।तन.....।।६।।

धन मद में छक कर बार-बार दरसाता।
रहे कायम मेरा नाम धाम बतलाता।।
रंगत इसकी उड़े न यों समझाता।
पावे वही इनाम कला दिखलाता।।
सुनूँ सभी मुख भवन बड़ो गुलजारो।।तन.....।।७।।

उस समय वहाँ मुनिराज अतिशय ज्ञानी।
आ गये कार्य वश सुनी सेठ की बानी।।
मन्द दिये मुस्काय मुनिमन जानी।
कितना है जीवन शेष हृदय नहीं आनी।।
आगे बढ़ रहे सन्त ध्यान दूरियारो।।तन.....।।८।।

सेठ खड़ा हो वन्दन मुनि को कीना।
दया पालो आशीष मुनि ने दीना।।
सोचे सेठ क्या कारण गुरु हँस दीना।।
है ज्ञानीं गुण भण्डार भविष्य मुझ चीना।
कब आवे अवसर करूँ बात निस्तारो।।तन.....।।९।।

यों दिल में सोचता सेठ भवन पर आया।
सेठाणी जी ने थाल बाजोट लगाया।।
अति आदर करके भोजन उन्हें जिमाया।
ले पंखा करती हवा सेठ सुख पाया।।
पति मिले आप सम धन्य हुआ अवतारो।।तन.....।।१०।।

किन्तु आप मुख देख हुई हैरानी।
अहो निश कर रहे काम भवन निगरानी।।
नहिं रखो धूप का ध्यान सूरत कमलानी।
प्रतिदिन हो रहा क्षीण देह सुखदानी।।
कुछ तो स्वास्थ्य का ध्यान आप दिल धारो।।तन.....।।११।।

मजदूर काम कर रहे सभी तन मन से।
फिर भी धूप में खड़े रहो निज तन से॥
सब होता जग में काम आज तो धन से।
अतः एक नौकर रख काम लो उन से॥
सेठ कहे तज चिन्ता शांति दिल धारो॥तन....॥१२॥

अब पूरण होने आया भवन हमारा।
रंग रोगन हित आ गये हैं चित्तरकारा॥
चित्राम वहाँ हो जाय होय छुटकारा।
होगा आलीशन भवन सुखकारा॥
दिल से मेरा सोच सभी तुम टारो॥तन....॥१३॥

इस मुन्ने के हित एक झूलणा लाया।
चन्दन की लकड़ी कंचन में मंडवाया॥
मंजिल सातवें भवन मांहि रखवाया।
खुश रहे यह अपना लाल सेठ फरमाया॥
शुभ दिन प्रवेश का कब आवे सुखकारो॥तन....॥१४॥

बना रसोई घर तो साताकारी।
नहीं आये दिक्कत हो भोजन तैयारी॥
जाली झरोखे भी हैं वायु कारी।
धूप धूएँ से बचूं नाथ हर वारी॥
बात काट कर सेठ करे यों इशारो॥तन....॥१५॥

अहो आज तो कैसी की तैयारी।
किन-किन चीजों की शोभा करूँ इस बारी॥
पुड़ी कचोरी खीर बनी गुलजारी।
गुलाब जामुन की छवि देखो है न्यारी॥
आपस में हंसी को छूट रह्यो फव्वारो॥तन....॥१६॥

उस ही क्षण माँ मुन्ने को ले आई।
पिता गोद में उसको दिया बिठाई॥
कुछ ग्रास दे रहा था उसके मुंह मांही।
की लघु शंका तब गिरी थाल में आई॥
फिर भी सेठ दिल आयो न क्रोध लिगारो॥तन....॥१७॥

उस समय मुनिवर गोचरी लेने आये।
सेठ सेठाणी वन्दन कर हरसाये॥
बड़े चाव से दोनों मिल लहराये।
मुनि सेठ को देख मन्द मुस्काये॥
मुस्कान सेठ लख विस्मित हुओ अपारो॥तन....॥१८॥

कर भोजन मुखवास लिया तिणवारी।
लेट पलंग पर सोचे हृदय मंझारी।।
मुनिवर को रहस्य बिन कभी न हंसी आवे।
मन की शंका टालूं समय मिल जावे।।
गहरी नींद ले उठयो चार वज्या रो।।तन....।।१६।।

सत्वर चल कर सीधा हाट पर आया।
खोल चोपड़े भवन हिसाव लगाया।।
उस वक्त दौड़ता छाग हाट पे आया।
कांप रहा तन मन मांहि घवराया।।
मूक भाव से कहे मृत्यु से टारो।।तन....।।२०।।

पीछे-पीछे बधक पकड़ने आया।
देख छाग की दशा सेठ दरसाया।।
ले लो मुझसे मोहर छोड़ दो भाया।
कहे कसाई चार मोहर में लाया।।
पांच मोहर बिन है नहीं यो देणारो।।तन....।।२१।।

मुक्त करा नहीं सका सेठ उस ताई।
ला अन्दर से छाग दिया सम्भलाई।।
उस वक्त मुनि भी कारणवश गये आई।
सेठ वन्दना की गये मुनि मुस्काई।
उस वक्त सेठ कहे शंका मेरी टारो।।तन....।।२२।।

मुनि कहे यदि संशय हरना चावो।
खुशी-खुशी तुम स्थानक मांहि आवो।।
जो भी दिल में शंका हो वतलाओ।
निशंक होय कर पूछो भय मत लाओ।।
यों कह कर मुनि तो आये स्थान मंझारो।।तन....।।२३।।

सायंकाल चल सेठ स्थानक में आया।
कर वंदन अपना भाव सभी दरसाया।।
जव चित्रकार से कही आप मुस्काये।
क्या कारण है गुरुदेव मुझे फरमायें।।
मुनि कहे तुम अपना शव्द सम्भारो।।तन....।।२४।।

सेठ कहे वे शव्द स्मरण में आये।
कहा उन्हें मैं रंग रोशन चमकाये।।
सात पीढ़ी तक वह नहीं उड़ने पाये।
सुन करके मुनिराज उन्हें दरसाये।।
तेरी आयु कितनी दिल में जरा विचारो।।तन....।।२५।।

चन्द समय का वास यहाँ से जाना।
है सात दिनों का केवल तू महमाना॥
धन धाम सभी तज होना तुझे रवाना।
सात पीढ़ी की बात करे मस्ताना॥
इस जीवन में विश्वास नहीं है पल रो॥तन....॥२६॥

कुछ लाकर आर्त ध्यान सेठ दरसावे।
क्यों भोजन करते मन्द हंसे बतलावे॥
मुनि कहे नहीं बात कहन दिल चावे।
सुनी सेठ जी साग्रह अर्ज सुनावें॥
मम दिल की शंका मेटो होय उपकारो॥तन....॥२७॥

अति आग्रह को देख मुनि फरमाया।
जिस मुन्ने को ले गोद आप रमाया॥
पेशाव किया भोजन में क्रोध नहीं आया।
वह है पत्नी का यार याद में लाया॥
तू मार उसे एकान्त हुआ हत्यारो॥तन....॥२८॥

वह मर कर आया नारी गर्भ के मांही।
जव जन्मा तुमने बांटी खूब मिठाई॥
यही लगावे कलंक कुल के मांही।
सम्पत्ति करेगा नष्ट होय दुःखदाई॥
भेद दियो दरसाय भविष्य को सारो॥तन....॥२९॥

बात तीसरी वकरे की दरसाई।
तव मुनिराज ने दीना भेद वताई॥
वह पूज्य पिता हैं तेरे सुनलो भाई।
मरने के दुःख से आया शरण के मांहि॥
कातर दृष्टि से कहता मुझे उवारो॥तन....॥३०॥

जोड़-जोड़ कर अति हर्षाया।
उस धन वदले गहरा कर्म कमाया॥
वह एक कृषक से कम दे ज्यादा लाया।
मर वकरा हो वह उस किसान घर आया॥
विन भुगते कर्मफल होवे नहीं छुटकारो॥तन....॥३१॥

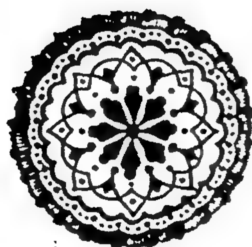
तू दे कसायी के हाथ कर्ज भुगताया।
इस तरह आत्मा भोगे कर्म कमाया॥
संसार जाल में फंसकर मान भुलाया।
वह भव चक्कर से पार नहीं हो पाया॥
अतः समझ कर्मों से करो किनारो॥तन....॥३२॥

श्लोक :– संसारः सिन्धु रूपश्च, मीन रूपाश्च मानवा।
जंजाल जाल रूपश्च, काल रूपश्च धीवरः ॥

नागदत्त ने सुनकर गुरुवर की वाणी।
संसार जाल लख मन में ऐसी ठानी ॥
बचूँ कर्म से उपाय लीना जानी।
मिटा देऊं भवजाल समय शुभ मानी ॥
कर जोड़ कहे गुरुराज भवोदधि तारो ॥तन····॥३३॥

त्याग दिया संसार बने अणगारा।
ज्ञान क्रिया से कीना जन्म सुधारा ॥
जैसा देखा कथन, भजन में ढारा।
किया कम ज्यादा का मिथ्या दुष्कृत सारा ॥
अरिहंतादिक आत्म साख उच्चारो ॥तन····॥३४॥

क्यों थोड़ी जिन्दगी खातिर कर्म कमाओ।
धर्म-ध्यान कर जीवन सफल बनाओ ॥
'प्राज्ञ' कृपा 'सोहन' कहे हिये जमावो।
जिससे नहीं हो अन्त समय पछतावो ॥
सम्यग्ज्ञान से काटो कर्म को भारो ॥····तन॥३५॥



११ सेवा से मेवा मिले

(तर्ज—हो भवियरा मंगलिक शरणा चार)

स्वार्थ तज सेवा करे हो भवियरा, वही पुरुष पुण्यवान ।
सेवा से मेवा मिले हो भवियरा, पावे शिव गति स्थान ।। सेवा ।।१।।

कि सेवा धर्म को हो भवियरा, धारो हो भव पार ।।टेर।।

मगध देश नन्दी गांव में हो भ० रहे विप्र एक दीन ।
सोमिल नामे ब्राह्मरणी हो भ० नारी धर्म प्रवीरण ।। सेवा ।।२।।

नंदीसेण एक पुत्र है हो भ० रूप घणो कुरूप ।
घृणा करे लख कर उसे हो भ० कर्म उदय अनूप ।। सेवा ।।३।।

मात–पिता दोनों गये हो भ० काल गाल के मांय ।
एकाकी वालक रहा हो भ० मामा घर ले जाय ।। सेवा ।।४।।

काम करे घर का सभी हो भ० रोटी कपड़ा पाय ।
कई वर्षों के वाद में हो भवि० नंदीसेण मनलाय ।। सेवा ।।५।।

अन्य स्थान में जा रहूँ हो भ० यहाँ नहीं है संभार ।
जाने लगा मामा कहे हो भ० यह क्या किया विचार ।। सेवा ।।६।।

यहाँ रहेगा तो तुझे हो भ० दूँ कन्या परणाय ।
वात मान कर रह गया हो भ० उमंग मन में लाय ।। सेवा ।।७।।

मामा ने निज सातों ही हो भ० कन्या पास बुलवाय ।
नंदी सेण के साथ में हो भ० कौन व्याहना चाय ।। सेवा ।।८।।

सातों ही सुण यों कहे हो भ० मरें जहर हम खाय ।
इनके संग हरगिज नहीं हो पिताजी शादी करना चाय ।। सेवा ।।९।।

नंदीसेण सुण वार्त्ता हो भ० गया मन में मुरझाय ।
इस जीवन से है भला हो भ० मरना ही सुखदाय ।। सेवा ।।१०।।

चला वहाँ से एक दिन हो भवि० पर्वत ऊपर जाय।
झंपापात खाने लगा हो भ० मुनिवर यों फरमाय ।। सेवा ।।११।।

मर मत मर मत बात सुण हो भ० आया मुनिवर पास।
उपदेश सुणी दीक्षा ग्रही हो भ० लीना अभिग्रह खास ।। सेना ।।१२।।

बेले-बेले तप करूँ हो गुरुवर जाव जीव लग धार।
रोगी आदि संत की हो गुरु० सेवा करूँ हरवार ।। सेवा ।।१३।।

इन्द्र सभा में एक दिन हो भ० देवों से बतलाय।
नंदीसेण मजबूत है हो भ० सेवा धर्म के मांय ।। सेवा ।।१४।।

दो देवों के नहिं जमी हो भ० आये परीक्षा तांय।
इक रोगी हो अरण्य में हो भ० एक मुनि पै आय ।। सेवा ।।१५।।

बेले का था पारणा हो भवि० लाकर बैठे आहार।
देव मुनि आया तदा हो भ० कहता यों ललकार ।। सेवा ।।१६।।

सेवा भावी कहला रहा हो मु० जग में ढोंग रचाय।
वृद्ध गुरु मम रोग हो मु० जंगल में दुःख पाय ।। सेवा ।।१७।।

सुनकर तज दिया आहार को हो मु० यों बोले कर जोड़।
खबर हुई नहीं इसलिए हो मु० नहीं आया उस ठौड़ ।। सेवा।।१८।।

देव मुनि यों बोलिया हो मु० लावो धोवण लार।
घर-घर में घूमे मुनि हो मु० फिर गये कई घर द्वार ।। सेवा ।।१९।।

सूझता जल पाया नहीं हो मु० हो गई ज्यादा देर।
देव माया से असूझता हो मु० हो गया जल चौफेर ।। सेवा ।।२०।।

थोड़ा जल मिला सूझता हो मु० एक गृहस्थ घर मांय।
जब पहुँचे मुनिवर वहाँ हो मु० वृद्ध कहे कटु वाय ।। सेवा ।।२१।।

दुःख पाऊँ अति देर से हो मु० क्यों की इतनी वार।
नम्र वचन कही वार्ता हो मु० क्षमा करें अणगार ।। सेवा ।।२२।।

साफ करी अतिसार को हो भ० अरज करे कर जोड़।
आप पधारो शहर में हो मु० सब साधन उस ठौड़ ।। सेवा ।।२३।।

वृद्ध मुनि इम बोलिया हो मु० नहिं शक्ति मुझ मांय।
नंदीसेण मुनिवर कहे हो मु० लेऊँ स्कन्ध बिठाय ।। सेवा ।।२४।।

बैठाकर खंधे चले हो भ० वृद्ध किया अतिसार।
सब शरीर मल मूत्र से हो मु० दीना सद्य बिगार ।। सेवा ।।२५।।

दुर्गन्ध अति तन पर हुई हो भ० नहीं की घृणा लिगार ।
कितना कष्ट ये पा रहे हो मु० तपसी करे विचार ।। सेवा ।।२६।।

जल्दी चल कर स्थान पे हो मु० करवाऊँ उपचार ।
सद्य चले तब यों कहे हो मु० हो रहा खेद अपार ।। सेवा ।।२७।।

देवज्ञान से देखियो हो अवि० घृणा नहीं मनमांय ।
करुणा भाव गहरा भरा हो भ० देव गये शरमाय ।। सेवा ।।२८।।

घुसते स्थानक साधुजी हो भ० रूप लिया पलटाय ।
चरण पड़ी कहे देव यों भ० सुनी प्रशंसा आय ।। सेवा ।।२९।।

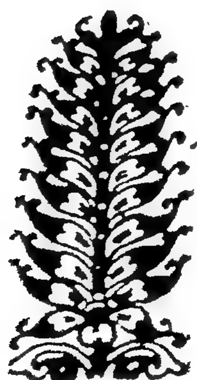
देव सभा में इन्द्र ने हो भ० गुण कीर्तन किये आज ।
जंची नहीं दिल में सही हो भ० आये परीक्षा काज ।। सेवा ।।३०।।

क्षमा सेवा तप देखने हो मु० हुआ पूर्ण विश्वास ।
इन्द्र कही सब सत्य है हो मु० कह गये अमर आवास ।। सेवा ।।३१।।

संयम पाला मुनीश ने हो भ० वर्ष बारह हज़ार ।
अन्त निदान घनदार का हो भ० कर गये स्वर्ग सिधार ।। सेवा ।।३२।।

वीस सागर सुख भोगने हो भ० यादव वंश में आय ।
श्री वसुदेव गुण रूप में हो भ० स्त्री वल्लभ कहलाय ।। सेवा ।।३३।।

'प्राज्ञ' कृपा 'सोहन' मुनि हो भ० सुनकर हिए जमाय ।
सेवा धर्म दिल धार ज्यों हो भ० जन्म-मरण मिट जाय ।। सेवा ।।३४।।



१२ आँख मींची : सब पराया

(तर्ज—लावणी छोटी)

सुख सम्पत्ति पाकर फूलो यहाँ मत प्यारे।
मिच गई आँख नहीं जावे साथ कुछ थारे॥
तू घर में वैभव देख अति हरसावे।
कर-कर के अन्याय अर्थ निपजावे॥
हाठ हवेली भवन बड़े बनवावे।
करके संचित कर्म नहीं शरमावे॥
क्या होगा आगे मन में नहीं विचारे॥१॥

धारा नगरी का भूप भोज महाराया।
दीन दुःखी प्रतिपाल प्रजामन भाया।
है सरस्वती का पुत्र गुणी गुण गाया॥
बड़े-बड़े पण्डित भी रहे इन छाया।
किया खूब विस्तार विद्या का सारे॥२॥

श्लोक—अद्य धारा सदा धारा सदा लंबा सरस्वती।
पंडित मंडिता सर्वे भोज राजे महि स्थिते॥
अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पंडित खंडिता सर्वे भोज राजे दिवंगते॥
इस नगरी में भू देव विप्र रहे नामी।
है विद्या का भण्डार लक्ष्मी की खामी॥

सरस्वती हो सन्मुख उससे बोली।
रखना मेरी बात हृदय में तोली॥
मैं हूँ प्रसन्न अब संग रहूँगी थारे॥३॥

किन्तु शर्त एक श्लोक कहीं सुन लेवे।
वह होय अधूरा उसे पूर्ण कर देवे॥
यदि छोड़ अधूरा जिस दिन तू चल देवे।
उस ही क्षण दूँ छोड़ ध्यान में लेवे॥
यों सरस्वती कह गई निज आगारे॥४॥

सरस्वती है लक्ष्मी नहीं घर मांई ।
इससे विप्र रहा दिल में अति दुःख पाई ।।
रक्खा सुबह का सुबह कहीं से लाई ।
अब चिन्ता शाम की हो रही है मन माईं ।।
कहाँ से लाकर रक्खूँ रहा घबरारे ।।५।।

विप्राणी कहे नाथ अरज सुन लीज्यो ।
नहीं रहा अन्न घर मांहि ध्यान कुछ दीज्यो ।।
होवे शाम को भोजन वस्तुएँ लाज्यो ।
नहीं तो भूखा रह कर रात बिताज्यो ।।
सुनकर विप्र दिल मांहि एम विचारे ।।६।।

क्या उपाय कर लाऊँ नाज घर मांही ।
जितने में उसके दिल में ऐसी आई ।।
बिन चोरी के हाथ लगे कुछ नाहीं ।
चोरी करने जाऊँ रात के माहीं ।।
मध्य निशा में निकला घर से बारे ।।७।।

वह चोरी करने किसान घर में जावे ।
उस वक्त नार निज पति से यों दरसावे ।।
मेरी फट गई साड़ी चारों ओर दिखावे ।
घिस गई जबां पर आप ध्यान नहीं लावे ।।
कहे किसान नहीं दाम पास में म्हारे ।।८।।

सुनकर विप्र चल दिया वहाँ से आगे ।
सेंध लगा कर देखे सेठजी जागे ।।
वहाँ सोता मित्र जग कहे हो किस में लागे ।
अभी देखलो घड़ी में बारह बागे ।।
फरक आ रहा दो आने का प्यारे ।।९।।

मैं यहाँ न चोरी करके आगे जाऊँ ।
नहीं पावे दुःख मैं वहाँ से धन ले आऊँ ।।
यहाँ से यदि मैं कुछ भी लेकर जाऊँ ।
पावेगा यह दुःख इन्हें न सताऊँ ।।
उस ही क्षण चल आया भोज नृप द्वारे ।।१०।।

सब सोते सन्तरी सीधा महल में आया ।
नवलखा देखकर हार हृदय हरखाया ।।
अभी उठा ले जाऊँ हो मन चाया ।
खुल गई भोज की नींद देख घबराया ।।
छिप कर सोने ले जाऊँ मौका पा रे ।।११।।

नहीं आ रही नींद नृप मन में ऐसे धारे।
श्लोक करूँ तैयार समय शुभ कारे॥
निज का साधन आवे उसमें सारे।
यों सोच श्लोक को मुख से वह उच्चारे॥
इन्द्रानी सम अन्तःपुर है म्हारे॥१२॥

श्लोक—चेतो हरा युवतयः स्वजनोऽनुकूलः।
सद्बान्धवा प्रणति नम्र गिरश्च भृत्या—
गर्जन्ति दन्ति निवहास्तर लास्तुरंगाः
संमीलने नयनयोर्नहि किंचि दस्ति।

अनुकूल स्वजन रच बांधव नमते सारे।
आज्ञापालक भृत्य हुक्म नहीं टारे॥
मद झरते हस्ती अश्व पवन गति वारे।
हो गये तीन पद भोज भूप अब धारे॥
चौथे पद में रक्खूँ किसको लारे॥१३॥

बार-बार नृप बोले नींद नहीं आवे।
सुनकर विप्र यों मन में ऐसे लावे॥
यदि यहाँ से जाऊँ वीणा वादिनी जावे।
बोलूँ कुछ भी भूप मुझे पकड़ावे॥
सांप छछुन्दर सी गति हो गई यहाँ रे॥१४॥

अब मूरख बन जीने से मरना अच्छा।
बस हिम्मत आ गई बोलन की हुई इच्छा॥
जिस दिवस नेत्र मिल जाय बोल कहूँ सच्चा।
जिसको मान रहा मेरा वह सब कच्चा॥
सुनते ही भूप का सारा मद उतरा रे॥१५॥

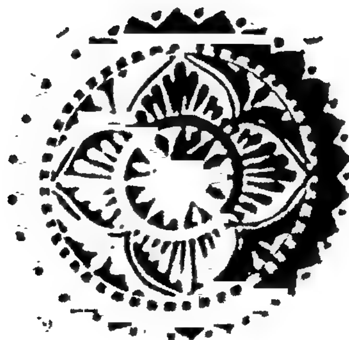
सच्ची कह रहा बात आँख मिच जावे।
धरा रहे धन धाम काम नहीं आवे॥
कौन सन्तरी मुझको यह सुनावे।
अर्ज करे हम इतना ज्ञान कहाँ पावे॥
करो निगाह है कौन पुरुष तब यहाँ रे॥१६॥

मैं हूँ चोर चोरी करने को आया।
सुन शब्द भूपति विस्मय मन में लाया॥
है यह पूर्ण विद्वान् श्लोक बनवाया।
पूरा कीना जिसे न मैं कर पाया॥
पहरेदार से कहा लाना सभा मंझारे॥१७॥

प्रातः सभा में हाजिर विप्र को कीना ।
सुनकर सारा हाल द्रव्य बहु दीना ।।
तुम सा बसे विद्वान् ध्यान नहीं दीना ।
कर चौथे पद को पूर्ण शान्त मम कीना ।।
उस दिन से मौत को याद रखे राजा रे ।।१८।।

सुनो बन्धुओ मत उलझो जग मांही ।
करके सुकृत ले लो खूब भलाई ।
अच्छा अवसर आया हाथ के मांई ।।
गुरु वचनों का पाकर हिये जगारे ।।१६।।

'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि सुनाये ।
समझदार वह सुनकर ध्यान लगाये ।।
कर चातुर्मास भीलवाड़े से बेंगू आये ।
दो हजार बत्तीस मृगसर सुख पाये ।।
सुदि पूनम दिन वार भलो गुरुवारे ।।२०।।



१३ मनुष्य नहीं, पुण्य बोलता है

दोहा :— सुगुरुदेव अरु धर्म ही, करदे भव जल पार।
गुरु 'प्राज्ञ' की सब मिली, जय बोलो नर नार ।।

(तर्ज : द्रोण)

कर सुकृत का काम यदि सुख चावे मा० यही संग मांहि जावे जी।
पुण्यवान जहाँ जाय वहीं आनन्द प्रकटावे जी ।।टेर।।

जयवन्त शहर में सेठ विजय सुखकारी मा० शुद्ध श्रावक व्रत पाले जी।
सदा करे धर्म ध्यान आण जिनवर की चाले जी।
सेठाणी भद्रा पतिव्रता गुणधारी मा० दान देने में शूरी जी।
अनाथ अपंग असहाय जनों की सहायक पूरी जी।
लाखों का घर में माल आनन्द नित वरते मा० भावना उत्तम भावे जी ।।१।।

ज्ञान, मान, धन पुण्य पुत्र हैं जिनके मा० जोड़ चारों की नामी जी।
पढ़ लिखकर हुशियार हुए नहीं कुछ भी खामी जी।
अच्छा योग लख सेठ कंवर परणाया मा० रहें सब आनन्द मांही जी।
अलग-अलग दिया सेठ काम सबको संभलाई जी।
काम सराफा बड़ा पुत्र करता है मा० बजाज दूजा कहलावे जी ।।२।।

करे तीसरा काम किराणा वेचे मा० चौथा कुछ भी नहीं करता जी।
माता पिता के अमित प्रेम में मस्ती भरता जी।
धर्म साधना करने में जी लगता मा० और कुछ भी नहीं भावे जी।
यह देख व्यवस्था भोजायां नित जलती मा० देवर यों बैठा खावे जी ।।३।।

सास सुसर भीं करे बढ़ाई इनकी मा० हमारे पति दुख पावे जी।
रात दिवस करें काम चैन चित्त में नहिं लावे जी।
अत: आज ही निज-निज पति को कहकर मा० अलग इनसे हो जावें जी।
अपने हक का माल सभी हम अब बटवावें जी।
फिर खबर पड़ेगी कैसे माल उड़ावें मा० सोच पति पास में जावें जी ।।४।।

अपनी-अपनी बात कही पति आगे मा० करो धन का बंटवारा जी।
शामिल में नहीं रहें यही दिल मांहि धारा जी।
सुनकर सब ही कहें आज क्या कहती मा० प्रेम से समय गुजारे जी।
जो मिले उसी में आनन्द है यों कहते सारे जी।
कई वक्त बात दी टाल एक नहीं मानी मा० नारियाँ व्यर्थ सुनावें जी ॥५॥

किन्तु औरतें नित इन्जेक्शन देतीं मा० असर कर गया मन मांही जी।
यह कहती हैं सच बात मान लो होय भलांई जी।
मिलकर तीनों पुत्र जनक से बोले मा० करो धन का बंटवारा जी।
अलग-अलग रहें यही हमारे मन में धारा जी।
सुनकर उनकी बात पिता यों कहता मा० मेरे दिल में यह आवे जी ॥६॥

पहले चलें हम सब देशाटन करने मा० बाद में करूं बंटवारा जी।
हो जावौ तैयार बिलंब तज करके सारा जी।
जनक आज्ञा पा चले मणिपुर आये मा० शहर लख हो गये राजी जी।
धर्मशाला में रहे जगह लख करके ताजी जी।
बड़े पुत्र को बुला पिता यों कहता मा० खर्च ज्यादा नहीं आवे जी ॥७॥

अतः रुपये पचास अभी ले जाओ मा० कमा सबको जिमावो जी।
पुनः रुपये मूल मुझे लाकर संभलावो जी।
आज्ञा पाकर आया शहर के मांही मा० कमा कर भोजन लाया जी।
सबको हलवा पुड़ी मौज से खूब जिमाया जी।
दूजे दिन जब गया दूसरा लाने मा० कमा कर वह भी लावे जी ॥८॥

किया चूरमा बाटी पेट भर खाया मा० तीसरा दिन जब आया जी।
गया तीसरा पुत्र कमा कुछ वस्तु लाया जी।
फुलका सब्जी बना जीमने बैठे मा० सभी के दिल में आवे जी।
अब कनिष्ट पुत्र क्या कमा हमें भोजन जीमावे जी।
प्रति दिन हमको मिला उतरता खाना मा० भूख कल पांती आवे जी ॥९॥

चौथे पुत्र को द्रव्य दिया चौथे दिन मा० कमा कर भोजन लाओ जी।
कहा पिता ने बना माल सबको जीमाओ जी।
सजकर तन शृंगार वहां से चलता मा० शहर के बाहर आया जी।
देखा अच्छा स्थान सो गया तरु की छाया जी।
पग फैलाते मिट्टी हटी भूमि की मा० कड़ा एक पग में आवे जी ॥१०॥

देखा उठकर भरा चरू मोहरों से मा० दीनारें कुछ ले चलिया जी।
शेष भूमि में रखकर सोचे इच्छित फलिया जी।
आकर हलवाई हाट बात यों कीनी मा० मिठाई शुद्ध बनावे जी।
ले लो पहले दाम माल जल्दी मिल जावे जी।
कई तरह की करा मिठाई सत्वर मा० गाड़ियां केई भरवावे जी ॥११॥

सारे गांव में दिया निमन्त्रण सब को मा० जीमने हित वहां आवे जी।
सन्त विलास बगीचे में वह स्थान बतावे जी।
लोग कहें यह कौन लक्ष्मी पति आया मा० रहा सब को जीमाई जी।
जयवन्त शहर का विजय सेठ रहे नाम सुनाई जी।
लेकर निज परिवार यहाँ पर आया मा० वही सब को जीमावे जी ।।१२।।

पिता पास आ पुत्र अर्ज यों करता मा० पधारो बाग के मांही जी।
आ रहे अनेकों लोग जीमने हर्ष भराई जी।
रंग बिरंगे सज कर अम्बर भारी मा० नारियाँ गायन गाती जी।
अनेक समूह से बनकर देखो बाग में जाती जी।
सुनी पिता जब आश्चर्य मन में लाया मा० कहाँ कैसे जीमावे जी ।।१३।।

कहा पुत्र ने भरे माल के गाड़े मा० शंका सब दिल से त्यागो जी।
कमी नहीं पकवान बहुत जीमण में लागो जी।
सोचे सेठ क्या मेरे नाम से लाया मा० कर्ज करके जिमावे जी।
यह दिल में आई बात सेठ का मुख कुम्हलावे जी।
देख सेठ का चेहरा पुत्र यों बोला मा० आप चिन्ता नहीं लावें जी ।।१४।।

दिया भेद सब खोल सेठ के आगे मा० सेठ सुन आनन्द पाया जी।
बड़े चाव से कुटुम्ब संग ले बाग में आया जी।
खूब करी सम्मान लोग जीमावें मा० कमी नहीं रक्खी कांई जी।
जन मन हो आनन्द मिठाई वही खिलाई जी।
रुच-रुच कर भोजन किया सभी नर नारी मा० माल कमी न आवे जी ।।१५।।

जीम सभी मुखवास लिया यों बोले मा० सेठ का दिल है गहरा जी।
अति प्रसन्न है चित्त देखलो खिल रहा चेहरा जी।
जिनका यह परिवार पुत्र भी ऐसे मा० लोक में यश फैलावे जी।
आई लक्ष्मी हाथ लाभ उसका ले जावे जी।
इस तरह प्रशंसा करते सभी सिधावें मा० सेठ सुनकर हर्षावे जी ।।१६।।

सभी काम से निपट सेठ यों सोचे मा० अभी इनको बतलाऊँ जी।
पुण्य बिना नहिं मिले जगत में यह समझाऊँ जी।
पुत्र बुला कहे द्रव्य कहाँ से लाया मा० पुत्र कहे मुझ संग चालो जी।
ले गया जंगल के मांहि कहे यह द्रव्य निकालो जी।
देख अर्थ को मात पिता अरु भाई मा० भोजायां अचरज पावे जी ।।१७।।

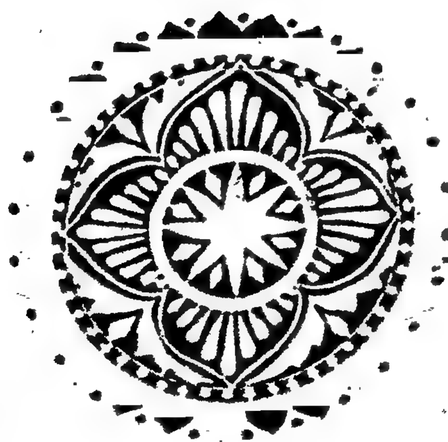
धन गहरा लेकर वापिस निज घर आये मा० पिता सब को बुलवावे जी।
अब करो अर्थ का भाग सभी आगे दरसावे जी।
सुनकर सब रहे मौन एक नहीं बोले मा० भाव यों मन में लावे जी।
ना जाने किसके भाग्य लक्ष्मी ठहरावे जी।
अतः सभी मिल कहें पिता के आगे मा० नहीं हम धन बंटवावें जी ।।१८।।

पिता कहे यह खेल जगत के सारे मा० पुण्यवानी से चाले जी।
जब घटे पुण्य तब आय नहीं कोई संभाले जी।
रहे एक भी पुण्यवान नर जहाँ पर मा० सदा नूतन सुख आवे जी।
जहाँ पड़े नजर वहाँ स्वयं लक्ष्मी हाजिर हो जावे जी।
अतः ईर्ष्या छोड़ रहो आनन्द में मा० श्रेष्ठ शिक्षा दरसावे जी ।।१९।।

उस दिन के पश्चात् रहे सब मिलकर मा० सेठ दिल भाव यों आवे जी।
छोड़ सभी जग जाल संयम मन मांही भावे जी।
उस समय वहाँ पर धर्म घोष मुनि आये मा० सूचना पा हर्षावे जी।
दर्शन कर सुन वाणी चित में आनन्द पावे जी।
विजय सेठ जग त्याग मुनि व्रत लीना मा० संयम में जोर लगावे जी ।।२०।।

करके करणी स्वर्ग में मुनि पधारे मा० जोड़ मुनि सोहन गावे जी।
कम ज्यादा यदि किया वो मिथ्या दुष्कृत थावे जी।
'प्राज्ञचन्द्र' गुरुदेव महा उपकारी मा० दया के हैं भण्डारी जी।
ज्ञान किया शुद्ध पाल क्षमा गुण लीना धारी जी।
दो हजार चौवीस पार्श्व जयन्ती मा० देवलिया कलां मनावे जी ।।२१।।

————



१४ जैसी करणी : वैसी भरणी

(तर्ज—लावणी खड़ी)

किये कर्म नहीं छूटे बंधन, सुनलो देकर दोनों कान ।
दुःख देने पर दुःख पावेगा, इसमें संशय नहीं है जान ।। टेर ।।

सुजानगढ़ के आस-पास, एक ढोंगरास है छोटा ग्राम ।
जहाँ का स्वामी शूरवीर, नरवीर कृष्णसिंह ऐसा नाम ।
एक समय सुसराल से लाये, बैठा ऊंट पर वे निज नार ।
जंगल में आते यों बोली, सुनो आप मेरे भरतार ।

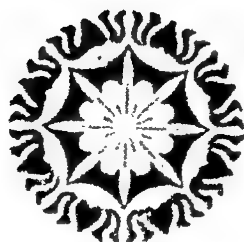
छोटी—इतना समय हो गया, रही मैं घर पर ।
खाया नहिं अज का मांस, कभी भी रुच कर ।।
अतः पुष्ट यह देवे, बकरा लाकर ।
तभी तृप्ति होगी, दिल में यह खाकर ।
कहा ठाकुर ने मौका पाकर, इसका रखूंगा पूरा ध्यान ।। १ ।।

अज को चुरा एक दिन, ठाकुर दीने ऊपर कांटे डाल ।
निशा हुई तब ले आया घर, काट दिया उसको तत्काल ।
मनमाने ढंग से खाकर के, खुशी मना रहे दम्पति बाल ।
कैसे बदला चुका सकेंगे, नहीं सोचा आगे का हाल ।

छोटी—कुछ समय बाद ठकुरानी बालक जाया ।
माता-पिता व जन-जन मन हरसाया ।
किया खूब ही खर्च आनन्द मनाया ।
फिर भावसिंह यह नाम पिता दरसाया ।
आनन्द से दिन निकल रहे हैं, दोनों के दिल हर्ष महान् ।। २ ।।

विवाह योग्य हो गया कंवर, लख संबंध कीना अच्छे स्थान ।
पाणिग्रहण पर बुला लिये हैं, दूर-दूर से निज महमान ।
बरात चढ़ते कंवर हो गया, मूर्छा खा सहसा बेभान ।
लोक सभी चिन्तित हो बैठे, पिता पुत्र से कहे दे ध्यान ।

छोटी—आंख खोल कर पुत्र पिता से कहता।
मैं वही हूँ अज, जो उदरासर में रहता॥
वह लेकर बदला, पर भव मांहि सिधाता।
यह कह कर मींचे नेत्र रहे पछताता॥
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, दुःख देकर दुःख पावे महान्॥ ३॥



१५ मित्र वही जो हरे विपत्ति

(तर्ज—लावणी खड़ी)

अपकार तजो, उपकार करो, अहसान कभी मत विसरावो ।
काम पड़े पर मदद करो, यदि भला आप अपना चावो ।। टेर ।।

बीसलपुर में सेठ सुगन का, चलता था अच्छा व्यापार ।
खूब नाम अरु काम हाथ में, करता है गहरा रुजगार ।
एक समय ले लिया माल वह, रखे बैंक में ले कल्दार ।
भावों में कुछ मंदी आ गई, करें बैंक वाले तकरार ।
दौर चला मंदी का तब, कहे रकम सुगन से झट लावो ।। १ ।।

नहीं साथ में साधन ऐसा, नकद उधारी ले आवे ।
सभी जगह फिर गया, रकम हित कौड़ी एक भी नहिं पावे ।
हताश हो गया सुगन, हृदय में सोचे यदि कुड़की आवे ।
तो बनी बनाई इज्जत, क्षण में सभी ढेर यहाँ हो जावे ।
उसी समय नोटिस ले आया, जल्दी रकम सब भुगतावो ।। २ ।।

उसी नगर में मित्र सुगन का, यशोभद्र रहता धनवान ।
किन्तु परस्पर कुछ कारण से, हो गई गहरी खींचातान ।
आपस में नहीं बोले मुख से, कभी न होता क्षणिक मिलान ।
कई वर्ष हो गये न कीना, एक दूसरे का वे ध्यान ।
सुनी अचानक बात सुगन की, कहा मुनीमों से जावो ।। ३ ।।

सभी सूचना लाकर मुझको, सच्चो-सच्ची दरसावो ।
अफवाहें क्यों फैलीं इतनी, यथार्थ बात सब ले आवो ।
कितनी रकम देनी है बैंक की, पता लगा करके लावो ।
कैसे सुगन दब गया रकम बिन, खोज करी जल्दी आवो ।
मुनीम जाकर वापिस आया, कहे सेठ क्या बतलाओ ।। ४ ।।

मुनीम कहे सब काम बिगड़ गया, कुड़की आने वाली है ।
बारह बजे यदि रकम नहीं दी, इज्जत जाने वाली है ।

ढाई लाख है देना बैंक का, पेढ़ी गिरने वाली है ।
सुगन मित्र को घेर लिया है, आ मंदी मतवाली है ।
यशोभद्र सुन करके सोचे, पहले रकम सब भुगताओ ।। ५ ।।

चला वहाँ से आया बैंक में, चैक काट कर दे दीना ।
जितनी रकम वकाया थी, वह हिसाव करके ले लीना ।
यशोभद्र आ गया हाट पर, पता नहीं उसको दोना ।
समय आ रहा कुड़की का, अब सुगन हो रहा गमगीना ।
सारी जगह यह बात हो रही, क्या होगा यह बतलाओ ।। ६ ।।

वक्त निकल गया कोई न आया, करे सुगन मन माहिं विचार ।
पता लगाऊँ क्या कारण है, तभी किसी ने कह दिया सार ।
सुनकर सोचे कभी न बोले, रखता मुझसे इतना खार ।
कैसे हो सकता है ऐसा, करदे इतना कर्ज उधार ।
सारा भेद मालूम होने पर, सोचे मित्र से मिल आओ ।। ७ ।।

मिले परस्पर कहे सुगन यों, किया आपने महा उपकार ।
यशोभद्र कहे कर्ज उतारा, इसमें मेरा क्या उपकार ।
आप भूल गये मैं नहीं भूला, था अपने में मित्राचार ।
उस समय आपने मिटा दिया था, आया मुझ पर कष्ट अपार ।
खोई मुद्रिका मेरे हाथ से, तंग करे वह झट लाओ ।। ८ ।।

उस समय ढाई सौ रुपये आपने, दीने उसको लाकर के ।
मिटा दिया था दुःख मेरा, वह कर्जा आप चुका करके ।
कहे सुगन उस समय मित्र थे, किया मैं मित्र समझ करके ।
किन्तु शत्रुता समझ आपने, कीना द्वेष भुला करके ।
कहाँ तक मैं गुणगान करूँ, है एक जीभ से बतलाओ ।। ९ ।।

बनो कृतज्ञ तुम शिक्षा धारो, कभी बनो कृतघ्न नहीं ।
गिरे हुओं के बनो सहायक, नर जीवन का सार यही ।
माया–काया नहीं रहेगी, ज्ञानी वचन दिलधार सही ।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, हो जावेगा अमर वही ।
दो हजार छब्बीस पोस में, मांडलगढ़ हो गया आवो ।। १० ।।



१६ जैसी नीयत : वैसी बरकत

(तर्ज—लावणी खड़ी)

सदा नीयत को साफ रखो, नहीं होवे जग में कुछ भी हान ।
यदि नीति में अन्तर आया, बिगड़ जायगी क्षण में शान ।।टेर।।

सम्बलपुर में भूधव माधव, उत्तम नीतिवान नृपाल ।
दीन दुखी जन की सेवा का, सदा हृदय में रखता ख्याल ।
उसी शहर के रहने वाले, दो मित्रों ने किया विचार ।
चलो यहां से बाहर कमाने, पता लगेगा लिखा लिलार ।
कान मान चल दिये वहां से, नहिं लीना संग में सामान ।। १ ।।

जाते मार्ग में पुण्य योग से, सुन्दर थैली नजर पड़ी ।
उठा उसे फिर खोला मुंह को, देखी मोहरें पूर्ण भरी ।
हर्षित होकर गिनने बैठे, सहस्र दीनारें गिनी खरी ।
दो मनियें भी बहुत कीमती, उसी साथ में निकल पड़ीं ।
आधी-२ करके बैठे, तभी विचारे दिल में कान ।। २ ।।

जिसके लिए चले थे घर से, वह साधन हमने पाया ।
चलो पुनः अब वापिस घर पर, कान मान को समझाया ।
मान कहे मैं चलूं न वापिस, आगे जा लाऊँ माया ।
तुम लौटो तो दे देना घर, मणि मोहरें हे भाया ।
मैं दे दूंगा कहकर लौटा, कान आ गया अपने स्थान ।। ३ ।।

आया शहर जा मित्र नार को, दीनी पंच शत दीनारें ।
लोक अनेकों गवाह बनाकर, बात जाहिर की जग सारे ।
सुनकर लोग प्रशंसा करते, कलिकाल में गुणधारे ।
नीति शुद्ध रखी ला दीनी, आधी वस्तु इण वारे ।
किन्तु मणि को छिपा पास में, कैसी जमाई जग में शान ।। ४ ।।

दोय वर्ष पश्चात् मान आ, पूछे क्या-२ दीना कान ।
नारी बोली भेजी आप वह, दीनी मोहरें यहां पर आन ।

और नहीं कुछ भी दीना है, इसका मुझको पूरा ज्ञान ।
मणि एक दी बहुत कीमती, उसी साथ में बोला मान ।
जाकर उससे अभी मांग लूं, कैसे गुप्त रखी नादान ॥ ५ ॥

मान कान के द्वारे आया, किया मित्र का अति सत्कार ।
बोला आप पधार गये, नहीं भेजी सूचना यहाँ लिगार ।
आज मेरा दिल हुआ है राजी, देख आपका शुभ दीदार ।
भले पधारे मित्र आपका, नहीं भूलूंगा यह उपकार ।
तभी मान कहें मणि न दीनी, भूल गये क्या भाई कान ॥ ६ ॥

कान कहे क्या कहा आपने, मणि उसी क्षण दे दीनी ।
देकर आया उनके हाथ में, बड़ी खुशी से ले लीनी ।
भूल गई क्या लेकर मणि को, उल्टी बात यह क्या कीनी ।
किये काम पर पानी फेर रही, बिसर कहीं पर रख दीनी ।
खैर छोड़ बात मित्र, मैं संभाल लूंगा बोला मान ॥ ७ ॥

वापिस आ कहे मणि सौंप दी, क्यों तू बोले मिथ्या बात ।
नारी कहती झूठा है वह, चलो आप होऊं साक्षात ।
कान कहे तू भूल गई क्या, दीनी मणि मैं तेरे हाथ ।
नारी कहती नहीं दी मुझको, क्यों कहते हो झूठी बात ।
न्याय कराने न्यायालय आ, नार कहे सुनलो गुणवान ॥ ८ ॥

न्यायाधीश सुन बोला कान को, दे दो मणि यों फरमाई ।
कान कहे मैं दीनी उसी क्षण, मेरे पास है गवाही ।
वृत्तान्त पूछ कर गवाह आदि से, झूठी नार को बतलाई ।
सुनकर के वह न्याय वहाँ का, नारी अति ही घबराई ।
वहाँ से सीधी भूप पास आ, कही बात होकर हैरान ॥ ९ ॥

राजा कहे मैं न्याय करूंगा, चिन्ता तज दो हे बाई ।
तत्क्षण भेज सिपाही नृप ने, लिया कान को बुलवाई ।
कान कहे यह झूठी नार है, मिथ्या जालें फैलाई ।
मेरे पास में सच्चे गवाह हैं, जाहिर होगी कपटाई ।
तीन गवाह ले आया साथ में, न्याय करो अब हे राजान् ॥१०॥

तीनों साक्षीदार कहें यों, मणि देखी हमने देते ।
कभी नहीं हम झूठ बोलते, सच्ची-२ सब कहते ।
दीनी मोहरें मणि साथ में, देखी नार को हम लेते ।
बंधी गुदड़ी में उठा गर्मी को, देखी ताक में हम धरते ।
सुनकर नृप आदेश सुनाया, अलग-अलग बैठो यह स्थान ॥११॥

तीनों मिट्टी भेज पास में, कहा मणि का करो आकार ।
तीनों का हुआ अलग-२ आकार, समझ गये हैं सरकार ।

गवाह सभी यह झूठे लाया, सच्ची कहती है यह नार।
भेज सन्तरी बुला कान को, कहे भूप ऐसे ललकार।
सच्चा हाल सुनादो जल्दी, नहीं तो बिगड़ जायगी शान ।।१२।।

मारे भय के कान कहे, मुझ नीयत में अन्तर आया।
मणि पास में रख करके मैं, झूठा दोष इस पर ढाया।
पाप प्रकट हो गया है मेरा, झूंठे गवाही वनवाया।
मणि मंगा धर दी है सन्मुख, लोग सभी विस्मय पाया।
हम तो समझते सत्य वोलता, किन्तु झूठा है यह कान ।।१३।।

मणि नार को देकर भूप यों, सभा वीच फरमाता है।
लाओ वेड़ियां डालो हाथ में, खोड़े में धरवाता है।
गवाह सहित रख दिया कान को, दिल में अति पछताता है।
किये कर्म अव उदय हुए यों, मन में ध्यान लगाता है।
साक्षी दी हमने झूठे की, पावें कैद में दुःख महान् ।।१४।।

अतः भविक जन ध्यान रखो, नित कभी न होवे ऐसा काम।
जिससे लोक अपवाद वने, और हो जावे जीवन वदनाम।
एक समय धर्म घोष पधारे, ज्ञान शिरोमणि गुण के धाम।
भूप नगर जन मान दम्पति, आये वंदन हित वहाँ स्वाम।
सुनी देशना दीक्षा ले नृप, मान दम्पति किया कल्याण ।।१५।।

वदनीति का फल देखो, वे अन्ते दुर्गति पाते हैं।
इस भव पर भव दोनों भव में, भारी कष्ट उठाते हैं।
अतः शुद्ध नीति को रक्खो, गुरुवर यही सुनाते हैं।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन मुनि' यों, व्यावर जोड़ वनाते हैं।
दो हजार तेवीस वर्ष, अक्षय तृतीया शुभ दिन जान ।।१६।।



१७ | सेयं ते मरणं भवे

(तर्ज—लावणी खड़ी)

समझ-समझ ए मानव अब तो, बंध काट कर हो न्यारा ।
स्नेह राग सम बंध जगत में, और नहीं है दुखकारा ।।टेर।।

जंबू द्वीप के भरत क्षेत्र में, पाटणपुर है नामी शहर ।
जितशत्रु है भूप वहाँ का, रखे प्रजा पर पूरी महर ।
राग रंग में समय निकलता, घर-घर में है सुख की लहर ।
सन्मार्गरत रहे सभी जन, अन्याय अनीति समझे जहर ।
दुष्ट, दुराग्रही, दुर्जन को नृप, दीना देश से निकारा ।।१।।

भाव देव भू देव विप्र, दो बंधव हैं आगम ज्ञाता ।
पाणिग्रहण कर भाव देव निज, नार साथ ले घर आता ।
एक समय सुन वाणी मुनि की, भाव देव मन में लाता ।
तज असार संसार बनूं मुनि, निज नारी को दरसाता ।
दोनों ही ले दीक्षा जग का, काट दिया झंझट सारा ।।२।।

अभ्यास किया स्व पर का मुनिवर, ज्ञान ध्यान में रमण करे ।
त्रिकरण योग से लिये महाव्रत, पालन करते शुद्ध सिरे ।
विचर-विचर कर भवि बोध दे, शिव मग ऊपर स्थिरी करे ।
एक वक्त पाटणपुर आये, ले आज्ञा वहाँ पर ठहरे ।
उस समय भूदेव नागला, नामा लाया परणी दारा ।।३।।

गये गोचरी कारण मुनिवर, देख बन्धु आनन्द पाया ।
किया आग्रह करने गोचरी, मुनिवर ने यह फरमाया ।
आ गई गोचरी नहीं चाहना, साथ-साथ स्थानक आया ।
कहे [illegible] मान लो, [illegible] जो दिल चाया ।
मुनि कहे [illegible], [illegible] में [illegible] ।।४।।

सुनी देशना त्याग नार को, मुनिव्रत को धारण कीना।
सदा गुरु के समीप रहकर, ज्ञानाभ्यास में चित्त दीना।
किन्तु नार का स्नेह याद में, रहे सदा ही रंग भीना।
वन्धु प्रेम से वोल सका नहीं, तजी नार संयम लीना।
ऐसे सोचते वारह वर्ष, भूदेव मुनि ने निकारा ॥५॥

जव से सुनी यह वात पति ने, भागवती दीक्षा लीनी।
उसी समय से नार नागला, दृढ़ प्रतिज्ञा यह कीनी।
जाव जीव तक छूट-छूट, पारणे आयम्बिल कर तन छीनी।
वारा वर्ष में जीर्ण शीर्ण, सूखे लक्कड़ सम देह कीनी।
रात्रि दिवस वह जप-तप करती, छोड़ दिया झंझट सारा ॥६॥

एक दिवस विन आज्ञा गुरु के, भूदेव मुनि पारण आया।
ग्राम वाहर निर्वद्य स्थान लख, आज्ञा ले मुनि ठहराया।
आती जाती नार संग में, समाचार यह कहलावा।
कहो नागला से जाकर के, भूदेव मुनि यहाँ पर आया।
सुनी नागला आई स्थान पर, नमन करी यों उच्चारा ॥७॥

क्या काम है उस नारी से, कहो आपने जो धारी।
मुनिवर उसको जान सके नहीं, वोले है वह मुझ नारी।
स्नेह हृदय से भरा हुआ है, मिलने आया इस वारी।
विवाह करी मैं छोड़ गया था, दुःख पाती होगी भारी।
अतः उसे जा दे दो सूचना, सिद्ध होय मुझ मन धारा ॥८॥

आप चाहना लेकर आये, किन्तु वह नहीं अपनावे।
संभव है नहीं मनोकामना, यहां सफल होने पावे।
सुनकर वोले क्या कहती हो, स्नेह भरा मुझ मन भावे।
उसके मिलते ही मैं मुनिव्रत, त्याग साथ घर पर जावे।
मेरे सम वह भी दुखियारी, कैसे दिन काटे सारा ॥९॥

नार कहे तुम मुनि वने हो, तज करके संसार असार।
वमन किये को वापिस चाटो, क्यों होते हो आप सियार।
मिली आपको गज असवारी, तजी वनो क्यों खर असवार।
मोह ममता सव तजी आपने, अव नारी की क्या संभार।
आतम साधन करने निकले, क्यों मुनि व्रत को वीसारा ॥१०॥

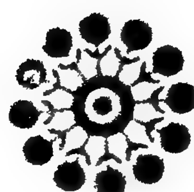
जिसे याद करते हैं निश दिन, वही नागला हूँ मैं पास।
विरति मार्ग को अपना कर अव, क्यों वनते भोगों के दास।

चन्द समय का जीवन है, नहीं आयु का पूरा विश्वास।
अतः स्वर्ग का वास छोड़ क्यों, करते हैं अब नर्क निवास।
पुद्गल परिवर्तन है देखो, पलट रहा जीवन सारा ॥११॥

धन्य सुबाहु कंवर जिन्होने, नार पंच शत को छोड़ी।
शचि समान बत्तीस नार से, शालिभद्र ममता मोड़ी।
धन धन्ना और मेघकुंवर ने, छिन में बंधन दिया तोड़ी।
छः खंड के नायक चक्री, संयम ले मुक्ति जोड़ी।
नारी नरक की खान कहीं कुछ, समझ बने हो अणगारा ॥१२॥

वचन बाण सम लगा कलेजे, सत्वर मन को मोड़ लिया।
कहे मुनिवर धन्य तुम्हें जो, गिरते नर्क से बचा दिया।
रहनेमी को अंकुश देकर, राजिमती जिम काम किया।
नार नहीं तू सच्ची गुरुणी, मम नयनों को खोल दिया।
उसी समय ली वापिस दीक्षा, मुनि बने शुद्ध व्रत धारा ॥१३॥

जप तप करणी उत्तम करके, मुनिवर सुरगति को पाया।
नार नागला बनी श्राविका, अन्ते अमरापुर ठाया।
स्नेह राग बंधन को काटो, यह अवसर सम्मुख आया।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, धन्य स्नेह से छुड़वाया।
दो हजार पचीस चौमासे, अजयमेर मंगलाचारा ॥१४॥



१८ सत्य ही भगवान् है

(तर्ज—लावणी खड़ी)

मत भटको भागवत दर्शन को, घट-घट में हैं उनका स्थान ।
सदा सत्य हित मित भाषा से, पावे निश्चय श्री भगवान ।।टेर।।

सरसपुर में विप्र एक, भूदेव नाम का रहता था ।
कथा भागवत करके अपना, जीवनयापन करता था ।।
एक समय भूदेव विचारे, जाऊं बद्री दर्शन काज ।
घर वालों से सलाह मिलाकर, कह दूं अपने दिल की आज ।।
बात कही सब कुटुम्ब सामने, सुनो लगाकर पूरा ध्यान ।।सदा।।१।।

बद्रीनाथ दर्शन हित जाऊं, कौन चलेगा मेरे साथ ।
चार पांच नर संग हो गये, सुनकर उनकी ऐसी बात ।।
जाते मार्ग में ठहरे जहाँ पर, करे कथा जन रंजन काज ।
सुनकर वाणी खुश हो दिल से, करे प्रशंसा सभी समान ।।
ऐसे चलते-चलते आये, गाँव मनोहरपुर दरम्यान ।।सदा।।२।।

रामा जाट था मुखिया वहाँ का, उसकी पोल में आ ठहरे ।
आये अतिथि देख बाहर से, भक्ति करे वह दिल गहरे ।।
भोजन व्यवस्था सभी जमाई, कमी नहीं रक्खी कांई ।
देख भद्रता विप्र कहे तुम, चलो संग में हम तांई ।।
कहे चौधरी कहाँ चलने का, बार-बार करते आह्वान ।।सदा।।३।।

भूदेव कहे हम जाते हैं सब, बद्रीनाथ के दर्शन काज ।
कई तरह के श्लोक पाठ कर, प्रसन्न करेंगे बद्री राज ।।
रामू कहे यह काम आपका, विप्र जाति के हो विद्वान् ।
मैं तो इतना पढ़ा लिखा नहीं, कैसे रिझाऊँ श्री भगवान ।।
पंडित कहे मैं तभी तो कहता, क्यों खोता अवसर नादान ।।सदा।।४।।

आप जा रहे बद्रीनाथ तो, मेरा श्रीफल ले जावें ।
बद्री हाथ में ले तो देना, नहीं तो वापिस ले आवें ।।
मुझे नहीं है फुर्सत वहाँ पर, जाकर दर्शन करने की ।
अभी सामने बहुत काम है, वक्त नहीं है कहने की ।।
लिया नारियल पंडित सोचे, कहां गंवार में इतना ज्ञान ।।सदा।।५।।

चली वहां से विप्र मंडली, सीधे आयी बद्रीनाथ ।
स्नानादि कर स्वच्छ होय के, बोले श्लोक सब मिलकर साथ ।।
दो घंटे तक करके सेवा, बैठे खाने दाल अरु भात ।
भोजन करते हुए विप्र को, याद हुई रामा की बात ।।
नहीं चढ़ाया श्रीफल मैंने, पड़ा रह गया, इस ही स्थान ।।सदा।।६।।

जीम वहां से चला है पंडित, लेकर श्रीफल हाथ मंझार ।
आकर कहता रामा ने, यह भेजा देने श्री चरणार ।।
यदि हाथ में लेना हो तो, दे जाऊँगा मैं इस बार ।
नहीं तो वापिस ले जाऊँगा, लाया जैसे अपनी लार ।।
कहते ही कर निकल गया, ले लिया नारियल श्री भगवान ।।सदा।।७।।

आँखें फाड़ता रहा विप्र, यह विस्मयकारी घटना देख ।
नहीं पढ़ा नहीं देखा ऐसा, मैंने कहीं पर भी उल्लेख ।।
अब मैं भी दूँ अपनी ओर से, करके प्रभु की भक्ति विशेष ।
किन्तु हाथ आया नहीं बाहिर, पाया विप्र दिल में अति क्लेश ।।
जाकर पूछूं रामा से मैं, चमत्कार का उसको ज्ञान ।।सदा।।८।।

वापिस आकर रात रहे वहीं, रामा ने खातिर कीनी ।
बिठा पास में उससे सारी, घटना वहाँ की कह दीनी ।।
कहा आपका श्रीफल मैंने, श्री बद्री को दे दीना ।
कहें चाव से विलंब रहित, वे कर में ले लीना ।
कहे चौधरी क्या अचरज है, जरा विचारो हो गुणवान ।।सदा।।९।।

पंडित कहे यह कला कृपा कर, मुझको भी दो बतलाई ।
रामा कहे इसमें क्या होना, ऐसी कला तो सब मांही ।।
यदि आप यह नियम करलो, झूठ न कहूँ प्रातः तांई ।
तो आप हाथ में सुबह दिया हूं, बद्री नाथ के कर मांही ।।
सदा निवासी मेरे घर में, मेरे साथ में रहे भगवान ।।सदा।।१०।।

नियम लिया सोया विप्र पर, सुबह जागते होना यों ।
पंडिताई को नहर हो गया, सा रहना है यहीं पर क्यों ।।

सुन कर कहे चौधरी तुमको, नहीं मिलेंगे श्री भगवान ।
कैसे तुमसे लेवे श्रीफल, झूठ भरा दिल के दरम्यान ।।
कितनी बार भागवत गीता पढ़ी, न छूटी निज की बाण ।।सदा।।११।।

चाहे जितने ग्रंथ पढ़े और, पन्थ भले ही अपनाये ।
किन्तु सत्यता आये बिन, नहीं जीवन सफल बना पाये ।।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, यदि भाव जग तिरने का ।
असत्य त्याग कर करो नियम तुम, सत्य मार्ग पर चलने का ।।
दोनों भव में सुख पावे जो, रखे सत्य पर पूरा ध्यान ।।सदा।।१२।।



१६ असत्य पाप है

(तर्ज—नेम जी की जान वणी भारी)

असत्य से सदा आप वचना, असत्य अघ सिर पर मत धरना ॥टेर॥

मृषा मत बोलो हे भाई, मृषा से पेठ रहे नाहीं ।
मृषा इह पर भव दुखदाई, मृषा दे भव-भव भटकाई ॥
दोहा—अल्प असत धर्म पुत्र को, कर दीना वदनाम ।
महाभारत है साक्षी इसका, सुनलो देकर कान ॥
ध्यान नित इस ऊपर रखना ॥अ०॥ १ ॥

पांडव अरु कौरव रण मांही, परस्पर लड़े जोश खाई ।
खड़े हुए द्रोणाचार्य आई, आज के युद्ध क्षेत्र मांहीं ॥
दोहा—सुनकर सारे वीर वर, घवराये उस वार ।
कोई न इनके सन्मुख ठहरे, जाने सव संसार ॥
भूल से गये होय मरना ॥अ०॥ २ ॥

उठा कर शस्त्र कहा ऐसे, अमंगल सुन लूं कानों से ।
त्याग दूँ शस्त्र हाथों से, युद्ध फिर करूँ न जीवन से ॥
दोहा—कृष्ण आय इस वात को, कही पांडवों मांय ।
सुनकर भीम गदा ली कर में, चलकर रण में आय ॥
आज अश्वथामा से लड़ना ॥अ०॥ ३ ॥

भीम ने गदा एक मारी, दिया रथ उसका उखाड़ी ।
यान हुआ चूरा उस वारी, मचा दिया शोर वलकारी ॥
दोहा—उस समय वहां भीम ने, अश्वथामा गजराज ।
एक वार में मार गिराया, वह थो सिरताज ॥
गाज अव आगे में सुनना ॥अ०॥ ४ ॥

भीम ने ऐसे ललकारा, गया अश्वथामा है मारा ।
और सब नाद निनारा, आचार्य ने यों मन में धारा ॥

दोहा—भीम वाक्य मानूँ नहीं, यदि कहे धर्मराय ।
तजूँ शस्त्र सब उस ही क्षण मैं, सोच वहाँ पर आय ।।
सुनूं यदि धर्म मुख मरना ।।अ०।। ५ ।।

पूर्व में कृष्ण वहां आये, धर्म को पास बुलवाये ।
बात कह ऐसे समझाये, वक्त का लाभ उठाये ।।

दोहा—अश्वथामा मर गया, देवो शब्द उच्चार ।
जीत हाथ में आ गई थारे, त्यागो सभी विचार ।।
सोच नहीं मन मांही करना ।।अ०।। ६ ।।

युधिष्ठिर बात सुन जानी, कहूँ मैं कैसे यह बानी ।
असत्य से होवे अति हानि, तथापि कृष्ण भय मानी ।।

दोहा—धर्म पुत्र उस वक्त में, कहें सुनो गुरुराज ।
अश्वथामा मर गया—नर हो या गजराज ।।
हुआ मुख शब्द उच्चरना ।।अ०।। ७ ।।

कृष्ण ने शंख फूंक दीना, शब्द नहीं पिछला कोई चीना ।
द्रोण ने शस्त्र डाल दीना, सोचे यह प्रण मैंने कीना ।।

दोहा– इस सामान्य असत्य से, धर्मराज का यान ।
चार अंगुल भू से ऊंचा था, पड़ा भूमि पर आन ।
मृषा अघ सद्य हुआ फलना ।।अ०।। ८ ।।

असत्य से धर्म स्वर्ग जाते, रोके गये नरक द्वार आते ।
पूछने से यों बतलाते, असत्य का फल यहां पर पाते ।।

दोहा– अल्प झूठ से नरक में, ठहराये धर्मराज ।
अतः तजो सब झूठ आज से, पावोगे शिवराज ।।
बात सुन दिल मांही धरना ।।अ०।। ९ ।।

असत्य सम पाप नहीं जग में, चलो तुम धार सत्य मग में ।।
जमालो सत्य रग रग में, सुयश छा जाये इस जग में ।।

दोहा—'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन मुनि', कहता वारम्वार ।
जिसकी श्रद्धा हुई सत्य पर, उसका वेड़ा पार ।।
सत्य का ले लो तुम शरणा ।।अ०।।१०।।



२० | भाव बिना सब शून्य

दोहा—भाव सहित भगवान को, रहो सदा तिहुँ काल ।
जन्म-मरण के चक्र का, मिट जावे भव-जाल ॥१॥

जग में कीमत भाव से, भाव विना सब शून्य ।
वस्तु फलती भाव से, बढ़ता भाव से पुण्य ॥२॥

(तर्ज—राधेश्याम रामायण)

एक समय श्रीकृष्ण सुयोधन, सभा भवन में आते हैं ।
करी खूब सम्मान भूप गण, उच्चासन विठलाते हैं ॥ १ ॥

भोजन का आ गया वक्त, तब भूप प्रार्थना करते हैं ।
आज हमें भोजन की हां दे, बारम्बार उच्चरते हैं ॥ २ ॥

किन्तु अभिमानी दुर्योधन यों, मन ही मन में सोच रहा ।
क्या जरूरत है कहने की यहां, भोजन करेंगे बिना कहा ॥ ३ ॥

उस समय विदुर के दिल में आई, करूँ प्रार्थना भोजन काज ।
कर जोड़ सामने आ बोला यों, पवित्र करें कुटिया महाराज ॥ ४ ॥

प्रभु ने सबके शब्द सुने, पर विदुर वाक्य सरसाते हैं ।
सरल हृदय से कहे वचन, भावों में रंगत लाते हैं ॥ ५ ॥

कहा नहीं प्रभु ने कुछ भी, किन्तु निश्चय कर लीना ।
आज विदुर के भोजन करना, सोच हृदय में चल दीना ॥ ६ ॥

देखा द्वार को बंद प्रभु ने, वहां आवाज लगाई है ।
सुन विदुरानी कृष्ण शब्द को, दौड़ी-२ आई है ॥ ७ ॥

भक्ति मग्न निर्वस्त्रा लख कर, प्रभु ने पीताम्बर डाला ।
नहीं पता है उस नारी को, भक्ति में मन मतवाला ॥ ८ ॥

टूटी पुरानी बिछा चटाई, प्रभु को उस पर बैठाये ।
भोजन हित कुछ और नहीं वहां, कदली फल ले आये ॥ ९ ॥

ला केलों को छील-२ कर, छिलके प्रभु को खिला रही ।
सार-२ केले के गर को, फेंक धूल में मिला रही ॥१०॥

तन, मन भक्ति रस में डूबी, पता नहीं क्या रही खिला ।
भगवन होकर मस्त खा रहे, मानों मोहन भोग मिला ॥११॥

इतने में आ गये विदुरजी, देख दूर से हरषाये ।
धन्य-धन्य हो गया आज मैं, मेरे घर भगवन आये ॥१२॥

किन्तु नार का देख कृत्य, झट केला कर से छीन लिया ।
पगली हो गई आज हुआ क्या, नहीं कुछ भी ध्यान किया ॥१३॥

तुझको कुछ भी होश नहीं, निस्सार वस्तु को खिला रही ।
खाने लायक उत्तम वस्तु, भूमि ऊपर गिरा रही ॥१४॥

विदुर वदन से शव्द सुने, तब प्रभु ने ऐसे फरमाया ।
विदुर ! कहो मत इसको कुछ भी, अमृत सम भोजन पाया ॥१५॥

सरस स्वाद युत भोजन मैंने, नहीं आज तक भी खाया ।
भक्ति रस से सना इष्ट, भोजन मैं यहां पर कर पाया ॥१६॥

कहूँ कहां तक विदुर तुझे, खाने की वस्तु यहां पाई ।
इतनी रस युत वस्तु मैंने, मात हाथ से नहीं खाई ॥१७॥

जो रहा एक फल केले का, वह विदुर हाथ से छील रहा ।
सार प्रभु को कर में रख, निस्सार भूमि पर डाल रहा ॥१८॥

भगवन रख मुख में यों बोले, मजा नहीं कुछ भी आया ।
विदुर सुनो जो रस उसमें था, वह रस इसमें नहीं पाया ॥१९॥

वस्तु में रस नहीं बन्धुवर, भाव प्रधान कहाता है ।
निस्सार चीज भी भाव युक्त हो, रस उसमें चू जाता है ॥२०॥

सुनकर समझो प्यारे मित्रो, भाव विना भक्ति निस्सार ।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, भाव उतारे भव जल पार ॥२१॥



२१ दानवीर कर्ण

(तर्ज—तावड़ो धीमो पड़जा रे)

पुण्य से समय हाथ आया रे २, करके सुकृत लाभ कमालो,
शुभ अवसर पाया ॥ टेर ॥

तन धन यौवन नाशवान है, ज्यों बादल छाया ।
पलट जाय यह एक पलक में, क्यों तू भरमाया ॥ १ ॥

क्षण-क्षण मांही क्षय होता है, समझो सब भाया ।
असार में से सार निकाले, गुणी वह कहलाया ॥ २ ॥

एक समय अर्जुन से बोले, श्री कृष्ण राया ।
इस जगती पर दानी कर्ण सा, नजर नहीं आया ॥ ३ ॥

किसी वक्त भी जाय अतिथि, मांगे वही पाया ।
निराश होकर लौट वहां से, कोई नहीं आया ॥ ४ ॥

बात श्रवण कर अर्जुन बोले, कैसे फरमाया ।
धर्म पुत्र सम दान वीर, तो कोई न कहलाया ॥ ५ ॥

कृष्ण कहे हम करें परीक्षा, सुन अर्जुन भाया ।
दोनों में है कौन शिरोमणि, दानी महाराया ॥ ६ ॥

बना विप्र का रूप, त्वरित ही धर्म द्वार आया ।
कहे सवामण चन्दन लकड़ी, चुनी दो राया ॥ ७ ॥

वर्षा मूसलधार हो रही, गगन मेघ छाया ।
सुन विप्रों की मांग, धर्म नृप चिन्त मांही लाया ॥ ८ ॥

कहां से सूखा चन्दन पावें, कैसा वक्त आया ।
नाहीं होगा इस कर बोले, फिरे धर्म राया ॥ ९ ॥

इस समय नहीं सूखा चन्दन, मांगें कहीं पाया ।
गीला चन्दन खड़ा हुआ है, देखो मन भाया ॥ १० ॥

हमें चाहिये सूखा चन्दन, ब्राह्मण दरसाया।
नहीं मिले इस वक्त यहाँ, तो जाते हम राया ॥ ११ ॥

कह कर वहाँ से हुए रवाना, कर्ण द्वार आया।
नमस्कार कर कर्ण कहे, मैं भला दर्श पाया ॥ १२ ॥

क्या सेवा लायक, जो हो आज्ञा दीजे फरमाया।
चन्दन लकड़ी सूखी सवा मण, चाहे हे राया ॥ १३ ॥

उस ही क्षण ले लिया कुल्हाड़ा, कर में कर्ण राया।
भवन द्वार को तोड़, चन्दन की ढेरी लगवाया ॥ १४ ॥

विस्मित होकर दोनों विप्र कहें, सुनलो महाराया।
अरे आप यह क्या करते हैं, द्वार तोड़ ढाया ॥ १५ ॥

बहुत कीमती भवन द्वार को, क्षण में तुड़वाया।
हम तो केवल सूखा लक्कड़, लेने हित आया ॥ १६ ॥

यह द्वार तो पुनः बनेगा, कहे कर्ण राया।
अच्छा नहीं हो निराश बन कर, जावे द्वार आया ॥ १७ ॥

इस मौसम में सुखा लक्कड़, खोजे नहीं पाया।
अच्छा नहीं हो निराश बनकर, जावे द्वार आया ॥ १८ ॥

आँखों से लख, सुन कानों से, अर्जुन चकराया।
मन ही मन में बोल उठा यों, धन्य कर्ण राया ॥ १९ ॥

कृष्ण अनेकों आशीर्वाद दे, पुनः स्थान आया।
कहा अर्जुन से इसलिये मैं, दानी कर्ण गाया ॥ २० ॥

यह सब साधन धर्म पास था, वह नहीं दे पाया।
प्रत्यक्ष रूप में दिखा तेरी, सब शंका मिटवाया ॥ २१ ॥

'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि, कहे किया वही पाया।
सवा पहर कब्जे में कर, हुए अमर कर्ण राया ॥ २२ ॥



२२ विषय राग बनाम मृत

(तर्ज—मारवाड़ी माँड)

हो मुझ प्रीतम प्यारा, मोहनगारा, सुन लो मुझ अरदास ।। टेर ।।

रण भूमि में रावण शव लख, बोली मंदोदरी आय ।
नाथ ! बात क्या हो गई है यहाँ, खोलो नी मुख वाय हो ।।१।।

एक हुंकार से भूधर भूधर, वन सब ही धर्राय ।
आज आपको देख यहाँ, मम हृदय अधिक अकुलाय हो ।।२।।

कौन आपको मारने वाला, इस भू पर प्रकटाय ।
कोई राम कोई लक्ष्मण की कहे, मारे गये हैं राय हो ।।३।।

यह जग में अमना है सबको, खुद ही मरे हो आप ।
निज कृत्य से चूक गये थे, उसका फल है साफ हो ।।४।।

एक समय इन्द्रिय दमन कर, लीना त्रिखंड राज ।
जहाँ तक सावधान हो रहिया, नहीं बिगड़ा कुछ काज हो ।।५।।

इन्द्रियां हर दम दाव लगातीं, बदला लेने काज ।
अवसर पाकर आतम ऊपर, जमा लिया है राज हो ।।६।।

एक सीता का बना बहाना, अक्षी खेले खेल ।
फंसा आपको अपने जाल में, बना दिया है मेल हो ।।७।।

क्या अन्तःपुर कम था आपके, नारी सहस्र अठार ।
रूप रंग लावण्य जिन्हों का, शचि सम सुन्दराकार हो ।।८।।

आप भूल गये, वे नहीं भूली, अपना पूर्व वैर ।
अवसर देख बना दिया, वस में, कर लीना है, जेर हो ।।९।।

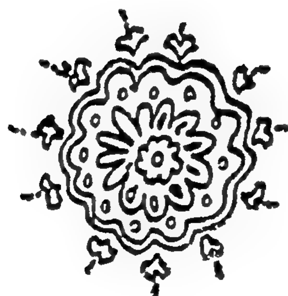
करके मुग्ध सीता पर तुम को, नहीं जमने दी बात ।
विविध भांति समझाया आकर, खुद विभीषण भ्रात हो ।।१०।।

हमें मरे हैं इन्द्रिय वस हो, मत लाना मन रोष ।
नहीं नहीं राम का, नहीं लिक्षमण का, नहीं सीता का दोष हो ॥११॥

कह प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, इन्द्रिय वस हो जीव ।
नमस् थोड़ा जीवन कारण जग में, देता दुर्गति नीव हो ॥१२॥

क्य समझ कर आतम साधन, साधो दिन अरु रात ।
उच्च भावना रख कर त्यागो, विषय राग की बात हो ॥१३॥

श्लोक – इन्द्रियाणि पुरा जित्वा, जितं त्रिभुवनं त्वया ।
स्मरन् खलु तइ बैरं, इन्द्रियै स्वयं पुनर्जितः ॥



२३ मनसा पाप

(तर्ज—खोटो लालचियो कोरो काजलियो)

तू त्याग सके तो त्याग, खोटी भावना ।। टेर ।।

एक समय की बात है, सब सुनो लगा कर ध्यान ।। १ ।।
सती द्रौपदी नहा रही, जाकर सरिता मांय ।। २ ।।
कर्ण भूप भी घूमता, उसी स्थान पर आय ।। ३ ।।
देख उन्हें यों द्रौपदी, मन में करे विचार ।। ४ ।।
छठे भ्रात यदि ये होते, करती मैं स्वीकार ।। ५ ।।
स्नान कर घर आ गई, आये कृष्ण मुरार ।। ६ ।।
सती भाव लख यों सोचे, बढ़े न लघु विकार ।। ७ ।।
अतः इसे तो आज ही, कर देना परिहार ।। ८ ।।
पांडव लख श्री कृष्ण का, कीना अति सत्कार ।। ९ ।।
करी प्रार्थना जीमलें, बोले कृष्ण मुरार ।। १० ।।
आज यहाँ नहीं बाग में, जीमेंगे सब लार ।। ११ ।।
उसी क्षण सब साथ में, आये बाग मंझार ।। १२ ।।
कहे मुरारी ध्यान से, सुनलो मेरी बात ।। १३ ।।
आज्ञा बिन फल-फूलों के, मती लगाना हाथ ।। १४ ।।
जामुन फल को देखकर, भीम गये ललचाय ।। १५ ।।
तोड़ लिया फल वृक्ष से, दिया कृष्ण फरमाय ।। १६ ।।
आज्ञा भंग का दंड यह, देवो पुनः चिपकाय ।। १७ ।।
फल रखो भू ऊपरे, निज गुण करो प्रकाश ।। १८ ।।
जिससे यह फल उठके, जा चिपके आवास ।। १९ ।।
धर्म पुत्र बोले तदा, झूठ न कहा लिगार ।। २० ।।

हमें मरे क्षण फल उठ गया, घुटने तक तत्काल ॥ २१ ॥
नहीं ।म से कहते गये, शाखा तक गया आय ॥ २२ ॥
कह द्रौपदी ने कहा, तज पांडव की अन्य छाय ॥ २३ ॥
नमस्ामुन फल गिर के, झट धरती पर आ जाय ॥ २४ ॥
क्य-कहते ही गिर गया, भूमि पर फल आय ॥ २५ ॥
।ती शर्मिन्दा हो गई, पश्चाताप कियो पुर ॥ २६ ॥
गलती निज की याद की, कर लीनी मंजूर ॥ २७ ॥
कल्मष मन का धोय के, फिर कीना जबउ च्चार ॥ २८ ॥
स्वतः वही फल उठके, चिपक गया है डार ॥ २९ ॥
पांचों पांडव देख के, कीना हृदय विचार ॥ ३० ॥
वासुदेव उपदेश दें, दीनी शंका टार ॥ ३१ ॥
छोटा पाप भी समय पा, हो जाता है भार ॥ ३२ ॥
जिसको संग्रह करके आत्मा, पावे दुर्गति द्वार ॥ ३३ ॥
अतः त्रियोग से पाप का, करो सभी परिहार ॥ ३४ ॥
'प्राज्ञ' कृपा 'सोहन' कहे, नहीं हो जीवन में रव्वार ॥ ३५ ॥



२४ भले भलाई : बुरे बुराई

(तर्ज :—राधेश्याम)

जिसका जैसा हो स्वभाव, वह वैसा कार्य दिखाता है।
सज्जन सज्जनता, दुष्ट दुष्टता, अपना रंग बताता है ॥१॥

एक समय दुर्वासा मुनि, सह शिष्य मंडली चल आये।
सभा भरी दुर्योधन की लख, मन में अति आनन्द पाये ॥२॥

किया खूब सम्मान भूप ने, मन में भय मुनि का भारी।
गलती हुई तो श्राप दे देंगे, बिगड़ जाय ऋद्धि सारी ॥३॥

भक्ति से हो प्रसन्न मुनिवर, कहे मांग वर जो चावे।
इच्छा हो सो कह दो मन की, शंका टाल वही पावे ॥४॥

सोचे नरपति क्या मांगू, बस शत्रु नाश करवा डालूं।
इनके श्राप से पांडव नाश हो, वही काम मैं करवालूं ॥५॥

कहे दुर्योधन यही चाहता, ऐसी कृपा हम पर कीजे।
मुझ भाई पांडव हैं वन में, उन्हें जाय दर्शन दीजे ॥६॥

अक्षय पात्र जब धोकर रखदे, सहस्र शिष्य संग में जाना।
अनायास वहाँ पहुँच सभी मुनि, खाना वहीं पर ही खाना ॥७॥

बात मान हाँ भरली ऋषि ने, दुर्योधन आनन्द पाया।
ऋषि श्राप से सर्वनाश हो, दुःख पावें पांडव राया ॥८॥

कुछ समय बाद मुनि गये वहाँ, लख धर्मराज मन हरषाया।
खूब किया सम्मान मुनि का, उच्चासन पर बैठाया ॥९॥

विनय युक्त तब धर्मपुत्र कहे, मुझ लायक सेवा फरमावें।
कहे मुनि हम स्नान क्रिया कर, वापिस आ खाना खावें ॥१०॥

मुनि गण कह कर नदी किनारे, स्नान क्रिया करने जावे।
धर्म पुत्र आ सती पास में, सारी घटना दरसावे ॥११॥

सुन सती द्रौपदी घबराई, अक्षय पात्र धो रख दीना।
आये अतिथि भूखे जाय हे नाथ! यहाँ यह क्या कीना ॥१२॥

उसी समय आ कहे कृष्ण, मैं भूखा हूँ भोजन दीजे।
बात सभी दे त्याग बहिन, अब जल्दी मेरी सुन लीजे ॥१३॥

हो हक्की बक्की कृष्णा बोली, क्यों मेरी परीक्षा लेते हो।
अक्षय पात्र धो रख दीना, तब भोजन की आ कहते हो ॥१४॥

कृष्ण कहे तू मजाक मत कर, मैं तो भोजन खाऊँगा।
टालटोल कर बचना चाहती, खाना खाकर जाऊँगा ॥१५॥

जल्दी ला वह अक्षय पात्र, मैं देख उसे वापिस दूँगा।
पात्र देख बोले गिरधारी भोजन तृप्त हो खालूँगा ॥१६॥

तन्दुल पत्ती लगी हुई है, यों कह कृष्ण ने खा लीना।
सारे जगत की भूख मिटादी, पांडव दुःख दूरा कीना ॥१७॥

देख द्रौपदी लज्जित हो गई, कैसी फूहड़ हूँ नारी।
अच्छी तरह नहीं धोया पात्र को, गल्ती हुई जाहिर मारी ॥१८॥

आश्वासन दे कृष्ण कहे, ओ बहिन नहीं गलती थारी।
आज ऐसा ही होना था, गम त्यागो बोले गिरधारी ॥१९॥

बुला भीम को कृष्ण कहे, तुम मुनिजनों को ले आवो।
भोजन की यहाँ कमी नहीं है, बड़े प्रेम से जीमावो ॥२०॥

भीम गये यों कहे पधारो, भोजन हो गया है तैयार।
शिष्यों सहित मुनीश्वर बोले, पेट भरा खाना दुष्वार ॥२१॥

क्षमा करें हम कह कर आये, भोजन हमको करना है।
इतना पेट भरा गहरा जो, वह भी शायद पचना है ॥२२॥

अनेक दे आशिषें बोले, धर्म पुत्र की जय जय कार।
पुण्य प्रबल हो जिस मानव के, क्या कर सकता शत्रु बिगार ॥२३॥

यदि चाहता दुर्योधन तो, अच्छा वर ले सकता था।
अपना और पराये का वह, भला खूब कर सकता था ॥२४॥

दुष्ट हृदय में भले भाव क्या, कभी स्थान पा सकते हैं।
अपना नाक कटाकर जग का, शकुन बुरा कर सकते हैं ॥२५॥

अतः ध्यान में रखो मित्रो, अशुभ भाव नहिं आने दो।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, सदा प्रभु को ध्याने दो ॥२६॥



२५ कर्म - फल

(तर्ज :—तावड़ा)

करम नहीं छोड़ेगा भाई रे-२,
चाहे कर्ता जाय कहीं पर रहे संग मांही ।।टेर।।

राजा सेठ सुर सुरेन्द्र की भी, परवाह है नाही ।
ज्ञानी ध्यानी मौनी तपस्वी, होवे ऋषिराई ।।१।।
भागवत की कथा कहूँ, सब सुणज्यो चित्तलाई ।
किये कर्म जब आय उदय में, होवे दुःखदाई ।।२।।
अरण्य वास माडव्य ऋषि का, है एकान्त मांई ।
ज्ञान ध्यान में मस्त किसी से, लेना कुछ नांई ।।३।।
चोर चोरी कर राज कोष से, गहरा धन लाई ।
पीछे का भय जाण आ गये, ऋषि आश्रम मांही ।।४।।
करते खोज आ गये सन्तरी, जहाँ थे ऋषिराई ।
माल सहित मुलजिम को पाकर, हर्षे मन मांई ।।५।।
समझ चोर सरदार ऋषि को, लाये राज मांई ।
माल सहित सब मुलजिम हाजिर, सुनलो नर राई ।।६।।
सुनते ही आदेश दिया, दो शूलो लटकाई ।
कोई पैरवी करें इन्हों की, नहीं हो सुनवाई ।।७।।
फूटा ढोल बजा नगर में, दीना घूमाई ।
नरनारी धिक्कार दे रहे, सुने हैं मुनिराई ।।८।।
चढ़ते शूली सभी चोर ने, मरण शरण पाई ।
जैसी करणी वैसी भरणी, लोग रहे गाई ।।९।।
चढ़ा दिया शूली पर ऋषि को, हर्षे ऋषिराई ।
मरे नहीं लख दौड़ सन्तरी, कहे नृप से आई ।।१०।।

बीतक घटना भूप सामने, दीनी दरसाई।
शूली पर भी प्रसन्न मन है, देखो नर राई ॥११॥

सुनी दौड़कर आया भूपति, अति विस्मय पाई।
कहे उतारो जल्दी यह तो, बड़े ऋषिराई ॥१२॥

पड़ा चरण में भूप उसी क्षण, कीनी नरमाई।
क्षमा करें अपराध मेरा अब, आप मुनिराई ॥१३॥

दोष माफ कर ऋषिराज ने, सोचा मन मांही।
धर्मराज से पूछूं कारण, शूली क्यों पाई ॥१४॥

धर्मराज से आकर पूछे, देवो दरसाई।
क्या अपराध किया पूर्व में, यहाँ सजा पाई ॥१५॥

धर्म कहे अघ करते आत्मा, सोचे कुछ नांही।
मौज शौक में कर्म बांधकर, फूले मन मांही ॥१६॥

पूर्व भव में उड़ती टीडी, हाथ मांय आई।
दीनी शूल से वींध, उसी का भल पाया यहां ही ॥१७॥

शूली बनी शूल की देखो, थोड़े समय मांही।
अतः सज्जनो डरो पाप से, हरदम चित्त लाई ॥१८॥

भ्रष्टाचार चले नहीं यहाँ पर, पक्षपात नांही।
सत्ताधारी अघ में फंसकर, चक्री नरक पाई ॥१९॥

'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, सुनो सभी भाई।
अगर दुःख से बचना चाहो, लीज्यो ध्यान मांही ॥२०॥

दो हजार बत्तीस फागण वुद, तीज भली आई।
चित्तौड़ शहर के सेंथी ग्राम में, कर्म कथा गाई ॥२१॥



२६ नैनन के जल से पग धोये

दोहा :—कैसा मित्र से प्रेम हो, सुनो भव्य चित्त लाय।
ऊंच नीच का है जहाँ, भेद कदापि नांय ॥

(तर्ज :—राधेश्याम रामायण)

विप्र सुदामा था गरीब, दिन कठिनाई से जाते थे।
था अभाव अन्न का घर में, फिर भी शांत मन रहते थे ॥१॥

घर नारी भी वैसी ही थी, कभी न दुःख सुनाती थी।
मिल गया समय पर जैसा तैसा, वैसा ही खा लेती थी ॥२॥

नहीं मिलने पर कभी कभी, पानी पी दिवस बिताती थी।
पति सामने आकर के, भूखी हूँ नहीं बताती थी ॥३॥

एक समय वह बोली नाथ ! मैं ऐसा आपसे सुनती हूँ।
कृष्ण मित्र मेरे हैं तब, मैं अर्जी ऐसे करती हूँ ॥४॥

एक वक्त श्रीकृष्ण मित्र से, मिलकर वापिस चल आवें।
कैसा मित्र के दिल में प्रेम है, अनुभव संग यों भी लावें ॥५॥

सुनकर सोचे विप्र हृदय में, कैसे मैं वहाँ पर जाऊँ।
नहीं वस्त्र पूरे हैं तन पर, अपमानित होकर आऊँ ॥६॥

विप्राणी कहे बार-बार, क्या शंका आपको आती है।
होगा वहाँ सम्मान आपका, यों विश्वास दिलाती है ॥७॥

विप्र कहे मैं कैसे जाऊँ, कुछ भी मेरे पास नहीं।
विना भेंट के मिलूं किस तरह, शंका दिल में खास यही ॥८॥

थोड़े बहुत यदि चावल होते, जाकर के मिल लेता मैं।
कई दिनों से कहती है, पर असली बात बतादी मैं ॥९॥

सुन विप्राणी इधर उधर से, चांवल कुछ लेकर आई।
बांध पोटली कपड़े में झट, पति हाथ में पकड़ाई ॥१०॥

लेकर पोटली चला द्वारिका, कृष्ण महल को पूंछ लिया।
भवन द्वार पर आते ही वहाँ, द्वारपाल ने रोक लिया ॥११॥

बिन आज्ञा के कहूँ तुम्हें, नहीं एक कदम भर सकते हो ।
आऊं पूछ कर वापिस तब तक, यहीं पर आप रुक सकते हो ।।१२।।

सवैया :—सीस पगा न झगा तन में प्रभु, जाने को आहि बसे केई ग्रामा ।
धोती फटी सी लटी दुपटी, अरु पांव उपानह की नहीं सामा ।।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रह्यो, चकि सो वसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपणो नाम सुदामा ।।

दोहा :—भेंट भली विध विप्र सों, कर ग्रहि त्रिभुवन राय ।
अन्तःपुर को ले गये, जहाँ न दूजा जाय ।।१।।
मनि मंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय ।
पानी धरयो परात में, पग धोवन को लाय ।।२।।
जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत संताप ।
पांय सुदामा विप्र के, धोवत ते हरि आप ।।३।।

सवैया :—ऐसे विहाल विबाइन सों, पग कटंक जाल लगि पुनि जोए ।
हाय महा दुःख पायो सखा, तुम आये इतै न कितै दिन खोए ।।
देखि सुदामा की दीन दशा, करुणा करि के करुणानिधि रोए ।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल से पग धोए ।।

सच्ची मित्रता होती है वहाँ, सुखी दुःखी का भेद नहीं ।
मैं ऊँचा हूँ, यह नीचा है, ऐसा मन में द्वैध नहीं ।।१३।।
कृष्ण मिलन क्या हुआ वस्तुतः, संकट सारा विरलाया ।
गई दीनता जन्म साथ की, महलों सा आनन्द पाया ।।१४।।
गुरु-भाई ने देखो कितना, उसको सुखी बनाया है ।
आज सगे बन्धु ने बन्धु पर, भारी बन्ध लगाया है ।।१५।।
जरा हृदय पर हाथ रखो, फिर बोलो तुमने क्या कीना ।
कितने धर्म-गुरु-भाई को, सेवा से प्रमुदित कीना ।।१६।।
सुनो ! सभी वैभव के साधन, ऊँचे नहीं उठायेंगे ।
सहधर्मी की करे शुश्रुषा, उनके गुण सब गायेंगे ।।१७।।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि यों, आज प्रेम से सुना रहा ।
जिसने सब को सुखी बनाया, उसका है सौभाग्य महा ।।१८।।

नोट :—सीस पगा न झगा·······से लेकर·······नैनन के जल से पग धोये·······
तक की रचना श्री नरोत्तमदास जी के 'सुदामा चरित्र' से उद्धृत की गई है ।



२७ बुरा किसी का मत करना

(तर्ज—लावणी खड़ी)

एक समय की घटना बंधव, सुनो लगाकर पूरण ध्यान।
छोड़ गया नल दमयन्ती को, सोती थी जंगल दरम्यान ॥टेर॥

जगकर देखा मिला न नल पति, करती है वह आर्त्तध्यान।
विपदाओं से बचने हेतु, कर्म बन्ध का रखना ध्यान ॥१॥

साम्राज्ञी थी हुई भिखारिन, वन–वन में भटका खावे।
फिरती–फिरती आई जहाँ थी, मासी अपनी कहलावे॥
गई राज में राणी एक दिन, रक्खी पास में दुखिया जान ॥२॥

झाड़ू बरतन साफ सफाई, इनके तालुक में कीना।
दिन भर मेहनत करे खूब, पर पता नहीं अपना दीना॥
स्नान कराना, कपड़े धोना, जो भी करती है फरमान ॥३॥

महाराणीजी नहाने आई, था जहाँ पर स्नानागार।
वस्त्राभूषण बड़े कीमती, तन से रक्खे दूर उतार॥
आकर दासियें स्नान कराती, महाराणी दिल हर्ष महान् ॥४॥

वस्त्राभूषण तन पर धारे, नहीं मिला है नवसर हार।
सबसे पूछा कौन ले गई, सभी हो गई वहाँ इन्कार॥
कोई न आया यहाँ महल में, यही ले गई दासी आन ॥५॥

महाराणी गाली दे बोली, कहाँ छिपाया है बदजात।
मेरा हार बता दे वरना, खूब पड़ेंगे घूंसे लात॥
बिना बताये नहीं छूटेगी, अच्छी तरह ले मन में जान ॥६॥

सुनकर दमयन्ती यों सोचे, देखा नहीं आँखों से हार।
फिर भी कलंक, आया सिर मेरे, पूर्व जन्म में दीना आल॥
उसका बदला आया सामने, कैसे होगा अब भुगतान ॥७॥

ना बोली तो महाराणी कहे, तू ही चुराकर ले गई हार।
भिखारिन तू कहाँ से आई, जगत् फिरोकड़ कुलटा नार ।।
पकड़ इसे मारो सब मिलकर, करे न चोरी यह शैतान ।।८।।

दोहा—बड़ों को कहते नहीं, लघु को सब कहे आय।
सासू में सौ बांक है, बहू को दोष बताय ।।

सत्य कहे वह सुने कौन, सब उलटा दोष लगाते हैं।
तेरे पास ही हार मिलेगा, सारे यही सुनाते हैं ।।
दमयन्ती यों सोचें मन में, अब तो सहायक हैं भगवान् ।।९।।

अखण्ड जाप नवकार मंत्र का, मन बच काया से कीना।
रक्षक एक आप हैं जिनवर, तेरा ही शरणा लीना ।।
उसी समय शासन का रक्षक, देव उपस्थित हो गया आन ।।१०।।

कहे देव घबरावे मत तू, सच्ची सती है जग दरम्यान।
सब संकट से मुक्त होयगी, बढ़ जावेगी तेरी शान ।।
अभी सभी की मरम्मत करके, दे दूँ इनको सही प्रमाण ।।११।।

जो दासी ले गई हार को, उदर पीड़ से घबराई।
हाय-हाय वह करती-करती, सती पास में चल आई ।।
क्षमा करें सब दोष मेरा है, बचा देवो अब मेरे प्राण ।।१२।।

हार हाथ में रखते ही सुर, पुष्प वृष्टि की बरसाई।
धन्य-धन्य हो सती आपको, कहती महाराणी आई ।।
चरण पकड़ कर बोली मुझको, माफी करदें आप प्रदान ।।१३।।

सती कहे नहीं दोष तुम्हारा, यह सब कर्मों की माया।
अशुभ कर्म का उदय अभी यह, मेरे सिर ऊपर छाया ।।
आप भाग्यवती शरणा देकर, कर दीना दुःख का अवसान ।।१४।।

'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, अघ करते कुछ भय खावो।
चरित्र सुनकर महा पुरुषों का, जीवन सफल बना जावो ।।
जोड़ करी चित्तौड़ किला पर, फागण वद नवमी को आन ।।१५।।



२८ सच्चा शिष्य

(तर्ज—लावणी छोटी)

सच्चा गुरु का शिष्य वही कहलावे, जो समय आय तब अपना शीश कटावे ।।टेर।।
यह घटना हुई यवनों के शासन मांही, तेगबहादुर गुरु को दिया मरवाई ।
चहुँ ओर लाश के पहरा दिया बिठाई, ले जा न सके कोई पुरुष यहाँ पर भाई ।।
चौराहे शव पड़ा नजर में आवे ।।१।।
लूं लाश पिता की जान जोखम में डारी, गुरु गोबिन्दसिंह ने
दिल में लिया विचारी ।
शव की दुर्दशा देख जोश ला भारी, झट घर से चलकर आया मार्ग मझारी ।।
वहाँ गाड़ीवान बणजारा दो मिल जावे ।।२।।
गाड़ी से उतर गुरु चरणों में शिरनावे, कर जोड़ पिता अरु पुत्र ऐसे दरसावे ।
इस वक्त कहाँ ! तब बोले शव को लावे, तो सुनो गुरुजी हम दोनों वहाँ जावे ।
नहि माने गुरु तब चरणों में गिर जावे ।।३।।
हां भरते ही तब पिता पुत्र वहाँ आवे, लापरवाही का जल्दी लाभ उठावे ।
लाश पास आ ऐसे मन में लावे, इनके स्थान पर किसको यहाँ सुलावें ।।
पुत्र कहे झट मेरा शीश उड़ावे ।।४।।
पिता कहे दो मेरा शीश उड़ाई, इनकी जगह पर देओ मुझे सुलाई ।
आपस में झगड़े इतना वक्त है नांही, पुत्र पिता का दीना शीश उड़ाई ।।
उस स्थान पिता को रख गुरु को ले जावे ।।५।।
लाश गुरु की लाकर के संभलावे,सच्चे शिष्य को देख गुरु हरसावे ।
ऐसे होवे शिष्य गुरु जय पावे, देश जाति अरु धर्म सभी दीपावे ।।
आदर्श भक्त को गुरुवर गले लगावे ।।६।।
इस तरह गुरु के लिए प्राण खो जावे, वे ही जग में नाम अमर कर जावे ।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि दरसावे, जाति का वणजारा यश ले जावे ।
वीर पुरुष ही ऐसे नाम कमावे ।।७।।



२६ ऋषि पंचमी

दोहा—ऋषि पंचमी की कथा, सुनो सभी नर-नार।
जीवन में जो धारले, पावे दुःख से पार ॥

(तर्ज—मांड)

हो सब श्रोत सुनियों हिय में धरियो—रिख पांचा अधिकार ॥टेर॥

एक सुमित्र ब्राह्मण के घर में, सुन्दर रेवती नार।
सुशील पुत्र है विप्र के जी, परणी सुशीला नार जी ॥१॥

काम करे खेती तणो जी, दौड़े दिन अरु रात।
बैलों को दे दुःख घणो जी, सुने नहीं कोई बात हो ॥२॥

सुमित्र मर इस ही घरे जी, बैल रूप में आय।
विप्राणि मर कुत्ती हुई जी, अपने ही घर माय हो ॥३॥

श्राद्ध दिनों में विप्र दम्पति, सोचे यों मन मांय।
मात-पिता का श्राद्ध करी हम, विप्र सभी जीमाय हो ॥४॥

खीर बनाने के लिए जी, दीना दूध चढ़ाय।
किसी काम वस उठी सुशीला, चलकर बाहर जाय हो ॥५॥

सर्प गरल कर गया दूध में, शूनी देखे हैं तांय।
जाति स्मृति से जान गई वह, खावे सो मर जाय हो ॥६॥

पूर्व जन्म में किये कर्म का, यहाँ रही फल पाय।
अब विप्रों की जान बचाऊँ, करके कोई उपाय हो ॥७॥

तत्क्षण गिरा पयः पात्र को, बैठी दूरी जाय।
वहू ने आकर देखा हृदय में, गुस्सा नहीं समाय हो ॥८॥

उठा लट्ठ झट मारी कुत्ती के, दीनी कमर को तोड़।
दुःख पा रही है मन में, पर जावे कहाँ अब छोड़ हो ॥९॥

हुआ बैल को जाति सुमिरण, देख वहाँ का हाल।
मेरे लिए तो घास नहीं पर, लोग उड़ावे माल हो ॥१०॥

रात समय आ बैल पास में, कुत्ती कहे निज बात।
आज मेरी तो कमर तोड़ दी, सुने कौन दुःख बात हो ॥११॥

सारी घटना सुनकर बोला, बैल वहाँ तत्काल।
आज श्राद्ध मेरा ही हो रहा, पर मैं हूँ बेहाल हो ॥१२॥

सारी बातें सुनकर समझा, पुत्र हृदय मंझार।
पूर्व भव के मात पिता मम, पा रहे दुःख अपार हो ॥१३॥

मेरे लिए ही कर्म बांध यह, आये तिर्यंच माय।
इनके संग दुर्व्यवहार करी मैं, कितना किया अन्याय हो ॥१४॥

उसी क्षण खाने को लाकर, दीना दोनों को डाल।
दूजे दिन जा ऋषियों के आगे, कह दीना सबहाल हो ॥१५॥

किसी जीव को दुःख मत देना, करना पर उपकार।
पशुधन को दो पूरी छुट्टी, गाय बछड़ा रक्खो लार हो ॥१६॥

सभी साथ में स्नेह मिलन कर, आपस मांहि खमाय।
बारह मास में उत्तम दिन यह, पर्व महा सुखदाय हो ॥१७॥

इस दिन मुक्ति मांहि सिधाये, क्रोड़ों ही ऋषिराज।
अतः समझ लो ऋषि पंचमी, पवित्र दिवस है आज ॥१८॥

ऋषियों की यह बात श्रवण कर, कर लीनी स्वीकार।
इसी तरह हर वर्ष करूँ मैं, लीनी प्रतिज्ञा धार ॥१९॥

'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, कही कथा अनुसार।
गुजराती पुस्तक में देखी, रच दी मांड मझार हो ॥२०॥



३० पक्ष कीजिये न्याय का

(तर्ज—राधेश्याम रामायरण)

जिस पक्ष में भगवान् होय वह, पक्ष प्रबल कहलाता है।
भौतिक पक्ष में फँसने वाला, जीत कभी नहीं पाता है ॥१॥

एक वक्त दुर्योधन घबरा, भीष्म पिता के पास गये।
गद्-गद् होकर करी प्रार्थना, आठ वक्त हम हार गये ॥२॥

कहे पितामह अगर युद्ध में, कृष्ण प्रतिज्ञा मांहि रहे।
और शिखण्डी न आये सन्मुख, पांडव एक भी नहीं रहे ॥३॥

यह चर्चा चौ तरफ फैल गई, हाहाकार हुआ भारी।
द्रौपदी सुन श्रीकृष्ण पास आ, मन की बात कही सारी ॥४॥

कितने आश्वासन दिये आपने, सारे क्या बेकार हुए।
रहते आपके पाण्डव युद्ध में, क्या ऐसे मारे जाएँ ॥५॥

कहे कृष्ण यह भीष्म प्रतिज्ञा, कभी नहीं खाली जाती।
पृथ्वी तल पर इन्हें जीत ले, ऐसी शक्ति नहीं पाती ॥६॥

कहे द्रौपदी चिता लगा अब, उसमें मुझको जल जाना।
कृष्ण देख बोले जल्दी उठ, मेरे पीछे आ जाना ॥७॥

चलते-चलते दोनों आये, भीष्म पिता के खेमे द्वार।
पांचाली जाओ तुम अन्दर, नमो पितामह चरण मझार ॥८॥

जेवर बजा हो खड़ी सामने, और नहीं मुख से कहना।
जो भी दे आशीष उसे तू, हर्षित होकर ले लेना ॥९॥

अन्दर जाकर नम चरणों में, मौन भाव से खड़ी रही।
नमते ही सौभाग्यवती हो, पितामह आशीष कही ॥१०॥

सदा सत्य हो वचन आपके, द्रौपदी ने झट बोल दिया ।
सुने वाक्य यों आँख खोलकर, अपने सन्मुख देख लिया ॥११॥

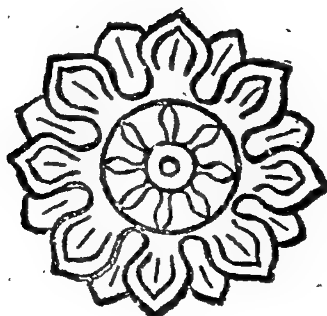
शब्द कहे ये समझ पितामह, दुर्योधन की पटनारी ।
पांचाली को देख सामने, विस्मय पाये हैं भारी ॥१२॥

बोले बेटी कहो यहाँ पर, कौन तुम्हें संग में लाये ।
सती न बोली उसके पहले, भीष्म उठा बाहर धाये ॥१३॥

देख कृष्ण को बोल उठे यों, जिसका पक्ष करे भगवान् ।
कौन हरा सकता है उनको, जगत् बीच में नहीं बलवान् ॥१४॥

आखिर विजय होयगी इनकी, भीष्म पितामह बोल रहे ।
रहते हैं भगवान् उधर, अन्याय त्याग कर न्याय गहे ॥१५॥

भौतिकता में उलझ कभी मत, अन्याय पक्ष में तुम जावो ।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, न्याय धर्म को अपनावो ॥१६॥



३१ गुरु बनाया जनक ने

(तर्ज : राधेश्याम रामायण)

शिष्य बना जाता है कैसे, जरा ध्यान से सुनो सही ।
इसको जितना सरल समझते, उतना शिष्यपन सुलभ नहीं ॥१॥

मिथिला के नरईश जनक, एक दिवस चित्त में सोच रहे ।
योग्य गुरु का शिष्य बनूं मैं, निगुरा जीवन नहीं रहे ॥२॥

ऐसे समय में अष्टावक्र ऋषि, मिथिला मांही चल आये ।
आध्यात्मिकता लख उनकी, नृप सोचे गुरु ये मन भाये ॥३॥

हीरे पन्ने माणक मोती, भर भर थाली रख दीना ।
गुरु बनाने को आया हूँ, ऐसे भाव प्रकट कीना ॥४॥

धन लेने से मना किया, ऋषि बोले ज्यादा त्याग करो ।
मैं चाहूं सो दे दो मुझको, तभी आप शिष्यत्व वरो ॥५॥

भूप कहे जो इच्छा हो सो, अभी आप फरमा दीजे ।
इन्कार नहीं होऊँ हरगिज, मैं दिल चाहे सो ले लीजे ॥६॥

ऋषि बोले यों तन मन धन, सर्वस्व समर्पण कर दीजे ।
जनक कहे सब किया समर्पण, मुझको शिष्य बना लीजे ॥७॥

इतना सुनकर हो प्रसन्न ऋषि, शिष्य भूप को बना लिया ।
कली कली खिल गई भूप की, मानों पेट भर सुधा पिया ॥८॥

शिष्य परीक्षा ऋषि करते थे, तभी विप्र इक चल कर आया ।
बोला राजन बहुत दुखी हूँ, दीजे कुछ आशा लाया ॥९॥

विप्र वचन सुन नरपति सोचे, क्या इसको दूंगा इस वार ।
ऋषिवर थाल नहीं लेते हैं, अतः अभी दे दूं तत्कार ॥१०॥

फैलाया जब हाथ कहे ऋषि, इस पर तव अधिकार नहीं ।
सभी समर्पण कीना मुझको, कैसे तुमने किया यहीं ॥११॥

नत मस्तक हो स्वीकृत कीनी, मुझ से भूल हुई भारी।
नहीं सम्पदा पर हक मेरा, अर्पित कर दी जब सारी ।।१२।।

पेशोपेश में पड़े भूप तब, विप्र कहे खाली जाऊँ।
ठहरो विप्र कर तन से श्रम मैं, दान तुम्हें कुछ दे पाऊँ ।।१३।।

जाने को जब हुए भूपति, कहे ऋषि कहाँ जाते हैं।
करके श्रम कुछ दे दूं विप्र को, भूपति यों दरसाते हैं ।।१४।।

ऋषि कहे कुछ सोचो दिल में, तन भी आपका रहा नहीं।
कर चुके समर्पण सारे ही, जब कैसे लोगे काम सही ।।१५।।

सुनकर नृप को हुआ क्रोध, तब ऋषि बोले मन दान किया।
अधिकार कहाँ मन पर तेरा, झट ऋषि ने नृप को ज्ञान दिया ।।१६।।

सुनकर नृप को बोध हुआ, और अपनी असलियत जानी।
क्षमा याचना करके बोला, गलती मैंने पहिचानी ।।१७।।

कृपा करी फरमादो गुरुवर, अब मुझको क्या करना है।
निर्विकार हो राज्य करो बस, मेरा यही सुनाना है ।।१८।।

गुरु चरणों में शीश झुकाकर, तत्क्षण नृप ने अर्ज किया।
काम क्रोध मद मोह आज से, सब ही मैंने छोड़ दिया ।।१९।।

सुख दुख में रहूँ एक भाव, नहीं किंचित् भी मैं सोच करूँ।
चाहे जैसी आय परिस्थिति, सम भावों से सहन करूँ ।।२०।।

राजा जनक तब ही से विदेही, इस जगती पर कहलाये।
सम भावों के आने पर, मुनि 'सोहन' दुःख मिटा पाये ।।२१।।



३२ भक्ति भगवान् बनाती है

(तर्ज : राधेश्याम रामायण)

जाति मद को त्याग अरे नर, जाति नहीं तिरायेगी ।
भक्ति ही है मुख्य जगत में, यही पार पहुँचायेगी ॥१॥
कीरात कुल में जन्म लिया, एक बाला का सम्बन्ध सुनो ।
सच्चे दिल से भक्ति कर हुई, भक्ति में मशहूर सुनो ॥२॥
मात पिता ने जान लिया अब, विवाह योग्य हो गई बाई ।
पशु पक्षी के साथ और भी, कई वस्तुएं मंगवाई ॥३॥
मेरे कारण इतनी हिंसा हो, ऐसा न विवाह मुझको भाता ।
छोड़ सभी को बन्धन से मैं, सुखी करूँ यह चित्त चाहता ॥४॥
मुक्त किये सब पशु पक्षीगण, प्रेमोल्लास धरी मन में ।
एकान्त स्थान में कर कुटिया, आवास किया अपना वन में ॥५॥
शबरी का यह काम प्रतिदिन, पहर रात रहते उठती ।
ले झाड़ू से कंकर कांटे, झाड़ भूमि को शुद्ध करती ॥६॥
प्रातःकाल तपस्वी जन जव, स्नान क्रिया करने जाते ।
स्वच्छ भूमि को देख योगीजन, मन में फूले नहीं समाते ॥७॥
तपः प्रभाव से होय प्रभावित, देव हमेशा यहां आते ।
मार्ग हमारा विशुद्ध करके, पुनः अमर यहां से जाते ॥८॥
प्रच्छन्न रूप से सेवा करके, सवरी दिल में हर्षाती ।
तप आश्रम से स्नान स्थान तक, दे झाड़ू वापिस आती ॥९॥
पुनः वहाँ से आकर सीधी, धर्म कथा सुनने जाती ।
प्रेम युक्त भगवद् वाणी सुन, चित्त में अति आनन्द पाती ॥१०॥
धर्म सभा में बैठी देख, सवरी को योगी यों कहते ।
शूद्रों को हक नहीं श्रवण का, कहकर अपमानित करते ॥११॥
सबने उसका अपमान किया, पर ऋषि शृंगी ने फरमाया ।
धर्म कथा सानन्द सुनो तुम, यों कह उसको अपनाया ॥१२॥

कितने ही योगी निन्दा कर, मिथ्या ही कलंक लगाते हैं।
पर ऋषि शृंगी सबकी सुनकर भी, धर्म कथा फरमाते हैं ॥१३॥

ऋषि मुख से एक दिन शबरी ने, वनवास राम की बात सुनी।
पुण्यवती सीता अरु संग में, भ्राता लक्ष्मण भक्त गुणी ॥१४॥

चन्द समय में यहाँ आयेंगे, सुन सबरी आनन्द पाई।
मैं भी करूं आतिथ्य यहां पर, यह उसके दिल में आई ॥१५॥

कर विचार इस तरह वहां से, जंगल में चल कर आई।
मीठे मीठे बेर खिलाऊं, यह इच्छा मन में लाई ॥१६॥

मिष्ट मिष्ट चख बेर आप, एकान्त स्थान में रखती है।
खट्टे खट्टे स्वयं खाय, मीठे का संग्रह करती है ॥१७॥

अन्तर्मन में सोच रही जब, राम यहाँ पर आयेंगे।
स्थान करूं तैयार जहां पर, बैठ बेर को खायेंगे ॥१८॥

उस समय राम तज तापस आश्रम, शबरी कुटिया पर आये।
भक्ति भाव सम्मान देख, शबरी के बेर झूठे खाये ॥१९॥

जब से स्नान पथ गन्दा हो गया, तब से योगीघ बराते हैं।
राम आगमन की करें प्रतीक्षा, नित प्रति ध्यान लगाते हैं ॥२०॥

सुना राम शबरी कुटीर पर, आकर के विश्राम लिया।
उसी समय सब योगी मिलकर, कुटिया ओर प्रयाण किया ॥२१॥

चल करके सब तापस गण तब, कुटिया के द्वारे आये।
अति प्रेम से राम वहां पर, झूठे बेर खाते पाये ॥२२॥

देख भक्ति योगी गण उसकी, मन में अति लजाते हैं।
पावन हो गया स्थान वहां का, जहां राम आ जाते हैं ॥२३॥

आ राम पास सम्मान युक्त सब, योगी बात सुनाते हैं।
दुर्गंध युक्त हो गया स्नान जल, इससे हम घबराते हैं ॥२४॥

हे संकट मोचन ! कष्ट हटाओ, आप विना नहीं कोई त्राता।
आशा धर हम आये शरण में, दुःख मिटा देवो साता ॥२५॥

राम कहें सबरी चरणोदक, प्रक्षालन कर ले जावो।
इससे होगा जल पवित्र, नहीं दिल में कुछ शंका लावो ॥२६॥

माफी मांग सब योगी जन, चरणामृत सबरी का लीना।
पयः कुण्ड में डाल उसे फिर, सुगन्धमय पानी कीना ॥२७॥

इस तरह भक्ति शक्ति देती है, मत जाति का अभिमान करो।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, जाति मद का त्याग करो ॥२८॥

---

३३ केवट की भक्ति

(तर्ज:—राधेश्याम रामायण)

केवट के दिल में जगा, सच्चा सेवा भाव ।
कब देखूं मैं राम को, पूरा लगा उछाव ।।

जिस समय राम बनवास हुए, उस समय निषाद ने यह जाना ।
निकले हैं आज अयोध्या से, यों सुना इधर होगा आना ।। १ ।।

सोचे दर्शन कब होवें, कब सेवा कर आनन्द पाऊँ ।
वह दिवस धन्य होगा मेरा, जिस रोज चरण रज ले पाऊँ ।। २ ।।

एक रोज अचानक भव्यानन लख, मन में अति आनन्द पाया ।
मनोकामना सफल हुई, मुझ आज मिले मन के चाया ।। ३ ।।

वहां राम यह ढूंढ रहे थे, नाविक कोई मिल जावे ।
सरिता करके पार यहां से, अगले स्थान पर हम जावें ।। ४ ।।

दोहा:— इस तटिनी के वेग से, कैसे होगी पार ।
सीता तट तक जा सके, काम बड़ा दुष्कार ।।

उसी वक्त आ केवट ने, सबको ही वंदन है कीना ।
क्या ढूंढ रहे हैं आप यहां, सुन राम उसे फरमा दीना ।। ५ ।।

चाह हमारे नौका की है, हम नदी पार करना चावें ।
केवट बोला हाजिर नौका, इन दोनों को बैठावें ।। ६ ।।

इस नौका से आप सिवा, मैं सबको पार लगा दूंगा ।
मेरे दिल में शंका है, मैं तुमको नहीं बिठाऊंगा ।। ७ ।।

इपत् हंस कर बोले राम, क्या शंका है जाहिर कीजे ।
क्यों नहीं नाव में बैठाता, इसका भेद बता दीजे ।। ८ ।।

दोहा:— हाथ जोड़ अरजी करूं, गलती हो सब माफ ।
मन की शंका छोड़ कर, कह दूं मैं अब साफ ।।

कुछ समय पूर्व पद रज की घटना, जो मेरे कानों में आई ।
उस भय से कीना मना आपको, सच्ची थी वह दरसाई ।। ९ ।।

जिस पद रज में यह शक्ति है, पत्थर भी नारी बन जावे ।
उतनी कठोर यह नौका है, ना आशंका दिल में आवे ।।१०।।

मेरा तो काम इसी पर है, सब घर का खर्च चलाने का ।
इसीलिए भय आता है, यह कारण नहीं वैठाने का ।।११।।

अतः वैठना चाहें आप तो, मेरी अर्ज स्वीकार करें ।
पहले मैं पैरों को धोलूं, दिल की शंका दूर टरे ।।१२।।

दोहा:— बस इतनी सी बात की, दो आज्ञा फरमाय ।
मेरे दिल अन्दर घुसा, भय दूरा टल जाय ।।

सवैया:— एहि घाटि सै थोरिक दूर, अहो कटि लौं जल थाह दिखाइए जौ ।
फरसे पग धूरि तरे तरनि, घरनि घर समझाइए जौ ।।
तुलसी अवलम्ब न और कछु, लरिका केई भांति जिवाइएजौ ।
वरु मारिये मोहि विना पग धोये, हौं नाथ न नाव चढ़ाइए जौ ।।

दोहा:— सच्ची भक्ति देख कर, दी मंजूरी राम ।
प्रक्षालन पय ले लिया, सोचे जाऊं धाम ।।

चरणामृत लेकर कहता मैं, घर पर जाकर आऊंगा ।
पुनः लौट इस तरणी से, तटिनी को पार लगाऊंगा ।।१३।।

घर जाकर के वुला कुटुम्वी, यथापंक्ति वैठाता है ।
चरणामृत के भर-भर चम्मच, वड़े मोद से पाता है ।।१४।।

राम कहे हे लक्ष्मण ! जाकर, निषाद को जल्दी लावो ।
किस में इतना समय लगाया, पता लगा करके आवो ।।१५।।

आज्ञा पाकर क्रोधावेश में, लक्ष्मण चलकर घर आये ।
आवाज लगाई देर हो रही, यहां आ किस में विलमाये ।।१६।।

दोहा:— कहकर के आया वहां, आऊं घर पर जाय ।
अभी तलक पहुंचा नहीं, दीना वक्त गमाय ।।

कुछ समय आप मुस्तायें यहां पर, अभी निपट कर आता हूं ।
जल्दी न करें कह दें जाकर, कुछ समय वाद ही आता हूं ।।१७।।

सुनते ही शब्द छा गया क्रोध, लक्ष्मण का पारा गर्म हुआ ।
अभी पकड़ ले जाऊं इसको, आकर सन्मुख खड़ा हुआ ।।१८।।

सभी हाल वहां का देखा, वह दृश्य और ही दिखलाया ।
बांट रहा है बड़े मोद से, जो चरणामृत लेकर आया ।।१६।।

शान्त हो गया त्वरित क्रोध, मन अनुज राम का शरमाया ।
बना बहाना लेने शिक्षा, मुझको यहाँ पर भिजवाया ।।२०।।

दोहा:— कितना भावों से भरा, केवट का हृदय धाम ।
चरणामृत लिया राम का, सुर दुर्लभ है काम ।।

आ जाय न गर्व कभी दिल में, एक भक्त राम का मैं ही हूँ ।
इस केवट की भक्ति के सन्मुख, मैं भक्त नाम मात्र का ही हूँ ।।२१।।

केवट कहे मैं निपट गया अब, संग आपके चलता हूँ ।
कारण से हो गया विलम्ब, मैं उसकी माफी चाहता हूँ ।।२२।।

सरिता तट आ नौका में, अब तीनों को बैठाया है ।
नाव चलाना सफल हुआ, मम नाविक दिल हरसाया है ।।२३।।

सोचे राम कुछ श्रम का बदला, इस केवट को मिल जावे ।
किन्तु क्या देने को पास में, इक पाई भी नहीं पावे ।।२४।।

दोहा:— राम हृदयगत भाव, त्वरित लिया पहचान ।
सीता मुन्दड़ी खोलकर, कहती लो भगवान ।।

चौपाई:– सीय पिय हिय की जान हारी ।
मनि मुन्दरी मन मुदित उतारी ।।

राम कहे लो बन्धत्र ! अपना, राह का श्रम जल्दी ले लो ।
है आजीविका इसी साथ में, अतः हाथ में यह झेलो ।।२५।।

देख मुद्रिका केवट बोला, क्या आप ही रीति मिटायेंगे ।
श्रम देकर के आप मुझे, क्या जाति बाहर बिठायेंगे ।।२६।।

एक जाति के होकर भी यदि, श्रम के बदले कुछ लेवे ।
तो सभी जाति के मिलकर, जाति से बाहर कर देवें ।।२७।।

मुझे जाति में रहने दो प्रभु, बस इतनी अर्जी है मेरी ।
सत्य सत्य दरसाता हूँ, मैं नहीं करूँ इसमें देरी ।।२८।।

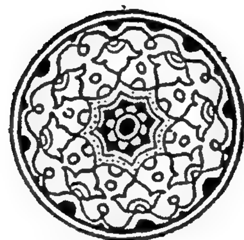
दोहा:— है मेरा अरु आपका, धन्धा एक समान
मेरी नौका काष्ट की, प्रभु के धर्म महान ।।

मैं सरिता से पार करूँ, प्रभु जग से पार लगाते हैं ।
जन्म-मरण के भव सागर से, प्रभु ही तट पहुँचाते हैं ।।२६।।

अत: आप देना चाहें, तो मुझको पार लगा दीजे ।
सब संकट से मुक्त बनूं मैं, ध्यान जरा मुझ पर कीजे ।।३०।।

शुद्ध भक्ति लख केवट की, झट राम ने गले लगाया है ।
भक्तों में मशहूर हुआ यह, 'भक्तमाल' में गाया है ।।३१।।

'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, निष्कपट भाव सेवा करिये ।
नहीं दिखावा हो जीवन में, ध्यान यही हरदम धरिये ।।३२।।



३४ मधु-बिन्दु

(तर्ज—लावणी खड़ी)

मधु बिन्दु सम सुख में फँसकर, नाहक जग में दुख पाये ।
भौतिक सुख को त्याग सुखी हो, संत पुरुष यह फरमाये ।।टेर।।

एक वक्त अटवी के माँही, जीवराज फँस जाता है ।
गण्डस्थल चू रहा जिन्होंके, वनगज सन्मुख आता है ।।
बड़े-बड़े तरु तोड़ सूंड से, भू ऊपर छिटकाता है ।
जीवराज लख उसे दूर से, दिल मांही कम्पाता है ।।
देख भयंकर दशा सोचता, कैसे अब यहां बच पाये ।।१।।

लगा लौटने मालूम ना हो, शनैः शनैः पीछे हटता ।।
किन्तु दृष्टि में आया दन्ती के, देख उसे पीछे भगता ।
बचने के हित दौड़ रहा, चउ ओर सहारा नहीं मिलता ।
कूद पड़ा लख कूप पास में, डरता क्या नहीं है करता ।।
पड़ते कूप के वट शाखा में, जीवा के पग उलझाये ।।२।।

ऐसे जोर से फँसा वहां पग, ऊपर शिर नीचे आया ।
दृष्टि गई नीचे की ओर तब, देख अति विस्मय पाया ।।
मुँह फाड़े एक पड़ा है अजगर, मानों काल की वह छाया ।
ऊपर देखा काट रहे दो, मूषक शाखा घबराया ।।
यदि कट गई शाखा इसकी, काल व्याल मुझ खा जाये ।।३।।

वहाँ लगा मधुमक्खी छत्ता, उड़-उड़ कर इस पर आवे ।
बार-बार दे रही वे चटके, मन में अति ही दुःख पावे ।।
किन्तु शहद की बूँद टपक रही, सीधी मुख मांही आवे ।
उसके रस में मुग्ध हो गया, दुखड़े सारे बिसरावे ।।
सुर विमान ले जाता आगे, देख उसे करुणा लाये ।।४।।

देव यान ठहरा कर बोला, बन्धव इसमें आ जावो ।
इतना दुःख उठाते हो तुम, बैठो इसमें सुख पावो ।।
वह बोला कुछ ठहरो आप, मैं शहद बिन्दु चख आता हूँ ।
समय गमाया मधु बिन्दु में, देव कहे मैं जाता हूँ ।।
चला गया सुर विमान लेकर, जीवा पीछे पछताये ।।५।।

इसी हेतु से समझो मित्रो, काल रूप है व्याल महान ।
जीव रूप जीवा यों भटके, भव अटवी में बन अज्ञान ।।
दो चूहे दिन-रात काट रहे, आयु रूपी शाखा स्थान ।
मोह रूप मदमस्त हस्ति यह, प्राणिमात्र के पीछे जान ।।
चतुर्गतिक यह कूप भयंकर, पड़ा जीव अति दुःख पाये ।।६।।

देव रूप है सद्गुरु बन्धव, लाये साथ में धर्म विमान ।
बार-बार आवाज लगा कहे, बैठो इसमें चतुर सुजान ।।
संसारी सुख मधु बिन्दु सम, लेने में उलझा नादान ।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, भौतिक सुख तज बनो महान ।।
दो हजार सतवीस चौमासा, टांटोटी में सुख पाये ।।७।।



३५ | गोगा नवमी

(तर्ज—लावणी छोटा)

जो दया धर्म पर हँस-हँस शीश चढ़ाते, वे वीर शिरोमणि गोगा सम यश पाते ।।टेर।।

तुम सुनो सज्जनो है यह एक कहानी, जो होगी लगभग दो सौ वर्ष पुरानी ।
जयपुर रजवंशी गोत्र कछावा नामी, जन्मे हैं जिसमें गोगा जी सुखदानी ।।
जिन कीना अनुपम काम सभी गुण गाते ।।१।।

तज जयपुर राज को मारवाड़ में आये, सम्मान देय के वहीं पर उन्हें बसाये ।
रहे मोद में नित आनन्द मनाये, क्षत्री कुल का जोश हृदय में छाये ।
यों खुशियों में वे अपना समय बिताते ।।२।।

एक समय सजा बारात विवाह हित जावे, वहाँ राग रंगयुत पाणिग्रहण करवावे ।
ढुंढाड़ देश से अपने ग्राम सिधावे, सरदार साथ में अजय शहर को आवे ।
धामधूम लख बारहट शब्द सुनाते ।।३।।

देखो ये सरदार आन को भूले, खा पीकर चढ़ गये मौज के झूले ।
करके तन शृंगार इते किम फूले, यवन करे अन्याय नेत्र नहीं खुल्ले ।
सुन करके बोले गोगा करो क्या बातें ।।४।।

दोहा— गोगा जोगा ना रहा, राठौड़ां रे मांय ।
जो गोगा जोगा हुवे, वेग बचावे गाय ।।

सुनते ही ऐसा गोगा जोश भराया, लिये शस्त्र संभाल त्वरित वहाँ छाया ।
बूचड़खाने से दो सौ गायें लाया, ले उन्हें साथ में मरुधर देश सिधाया ।
आगे से आगे बढ़ रहे हर्ष मनाते ।।५।।

यवन समूह पीछे से वहाँ पर जावे, कुचामन के पास आ घेरा लगावे ।
हुआ युद्ध घनघोर, वहाँ रक्त बहावे, नहीं दीनी गायें धर्म की शान बचावे ।
पर रक्त रंजित हो गोगा पड़े कराहते ।।६।।

उस वक्त वहाँ पर कुम्भकार चल आया, प्यासे गोगा को पानी लाय पिलाया ।
पानी पीकर गोगा ने देह छिटकाया, रखी धर्म की शान वे शुभ गति पाया ।
जो मरे धर्म के नाम अमर हो जाते ।।७।।

यह दिन हो गया मशहूर जगत सब जाने, गोगा नवमी त्यौहार लगे हैं मनाने ।
कुम्भकार भी लगा जीविका पाने, घर-२ जा राखी लगा इन पर डलवाने ।
'सोहन' मुनि यों धर्मवीर यश पाते ।।८।।



३६ सच्चा भक्त

(तर्ज—राधेश्याम रामायण)

कौन भक्त है सच्चा इसका, पता समय बतलाता है ।
काम पड़े सच्चे कच्चे का, सहज पता लग जाता है ।।टेर।।१।।

रामदास स्वामी जहाँ बैठे, भक्त हजारों आये हैं ।
उस समय शिवा सम्राट, संग में लोग अनेकों लाये हैं ।।२।।

दर्शन करते ही स्वामी जी, देख भक्त को मुस्काये ।
सभी भक्तगण देख स्वामी को, मन में अति विस्मय लाये ।।३।।

बड़े जनों का सन्त पुरुष भी, कितना आदर करते हैं ।
अन्य जनों के आने पर नहीं, ऐसे ये मुस्काते हैं ।।४।।

मुखाकृति लख सब भक्तों की, स्वामी मन में यों लाये ।
बतला दूं इनको क्यों मेरा, लखकर अन्तर विकसाये ।।५।।

लेट गये एक दिन शय्या पर, भक्त अनेकों वहां आये ।
पेट शूल से व्यथित हो गया, सब के आगे दरसाये ।।६।।

लोग कहें गुरु दवा बतायें, लेकर उसको हम आवें ।
अगर सिंहनी दूध मिले तो, रोग मेरा सब मिट जावे ।।७।।

सुनकर गर्दन नीची करके, बैठ गये हैं वहाँ सारे ।
सोचे जा सकता है वो ही, मरना मन मांही धारे ।।८।।

उस समय शिवा ने देखा है, गुरु शय्या पर बेचैन पड़े ।
पूछा यों कर जोड़ नमा सिर, चरणों मांही होय खड़े ।।९।।

गुरु बोले पय चाहे ताजा, जो कोई वन से लायेगा ।
उसी दूध में दवा लेऊंगा, अन्य काम नहीं आयेगा ।।१०।।

सुनते ही बोले छत्रपति, मैं अभी दूध ले आऊंगा ।
जहां मिलेगी, सद्य प्रसूता, दूध उसी का लाऊंगा ।।११।।

नमन करी गुरु चरणों में, ले स्वर्ण पात्र वन में आये ।
देखे खेलते बच्चे सिंह के, हर्षानन्द मन में पाये ।।१२।।

इतने में आ गई सिंहनी, शिशु समीप दौड़े आये ।
स्तनों को ले मुंह में शावक, चूंख रहे दिल हरषाये ।।१३।।

शनैः शनैः आ गये शिवाजी, देख सिंहनी गुर्राई ।
निर्भय होकर छत्रपति ने, उनके सन्मुख दरसाई ।।१४।।

यदि शुद्ध हृदय से सेवा की तो, दूध मुझे लेने देना ।
स्वारथ से या लोक दिखावा, दिल में हो तो खा जाना ।।१५।।

यह कह करके आगे बढ़ झट, पात्र दूध से भर लीना ।
शान्त हो गई वहां सिंहनी, नहीं शिवा का कुछ कीना ।।१६।।

स्वामी जी के भक्त अनेकों, वैठे मन में सोच रहे ।
सम्राट दूध कैसे लायेंगे, आपस में आलोच रहे ।।१७।।

तभी शिवाजी दूध लिए, गुरुदेव पास में चल आये ।
दूध तरोताजा है स्वामिन्, आप दवाई लिरवायें ।।१८।।

गुरुदेव उसी क्षण बैठे होकर, देख उसे यों फरमाये ।
तेरे जैसा भक्त जिन्होंके, उनके रोग कैसे आये ।।१९।।

भक्तों के दिल में थी शंका, मैंने उसको मिटवाई ।
आता है तू पास मेरे तव, देख दिया मैं मुस्काई ।।२०।।

समझे सारे भक्त, यथारथ भक्ति से गुरु मुस्काये ।
सच्ची भक्ति है दिल में, यह पता आज ही हम पाये ।।२१।।

भक्त कहाना सरल वात है, पर भक्ति को दुष्कर जानो ।
काम पड़े पर कायम रहता, भक्त वही सच्चा मानो ।।२२।।

गुरु सेवा जो करते दिल से, सम्मान उन्हीं का बढ़ता है ।
'प्राज्ञ'प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, वह अक्षय सुख को पाता है ।।२३।।

दो हजार इकतीस विक्रमी, माघ वुदी ग्यारस बुधवार ।
शहर जोधपुर सिंहपोल में, पांच संत आनन्द अपार ।।२४।।



३७ आप मेरी माँ हो !

(तर्जः—राधेश्याम रामायण)

सदाचार रखने वाले जन, जग में शोभा पा जाते ।
मुख्य अंग है जीवन का, यह रहस्य विरले ही पाते ।। १ ।।
वैसे तो सब ही कहते हैं, सदाचारी हम सा नाहीं ।
काम पड़े पर कायम रहते, कोई कोई जग मांही ।। २ ।।
एक समय औरंगजेब, मेवाड़ फतह करने आया ।
सजधज कर महाराणा राजसिंह, बड़े-बड़े योद्धा लाया ।। ३ ।।
उनमें था दुर्गादास एक, रण बांका और रंगड़नामी ।
शूरवीर रणधीर युद्ध की, कला जिन्हें पूरण पामी ।। ४ ।।
शाह की बेगम गुलेनार, लख रूप अति विस्मय पाई ।
बोली हो कामांध शाह से, यह वीर कभी हारे नांही ।। ५ ।।
अतः इसे जिन्दा ही लाकर, कैद मांहि डलवा दीजे ।
सेनापति से कहे शाह यों, किसी तरह पकड़ा लीजे ।। ६ ।।
करके दाव ला रक्खा कैद में, बेगम को यह ज्ञात हुआ ।
सुनकर सोचे मन वांछित, मुझ सभी मनोरथ सिद्ध हुआ ।। ७ ।।
पुत्र साथ ले अर्ध रात में, जहां वीर था चल आई ।
बोली अब तुम क्या चाहते हो, देवो मुझको बतलाई ।। ८ ।।
हिन्दुस्तानी तख्तशाह पद, या मौत वरण की इच्छा है ।
बात मानलो मेरी तब तो, इसमें सब कुछ अच्छा है ।। ९ ।।
आसक्त हुई तेरे ऊपर बस, इश्क कामना लाई हूँ ।
तख्त आगरे का हाजिर है, अर्ज सुनाने आई हूँ ।।१०।।
शाह आप हो मैं बेगम हूँ, जीवन भर तक मौज करो ।
लक्ष्मी तुम चरणों की दासी, होगी शंका दूर करो ।।११।।
यदि मुख से ना कह दी तुमने, मौत सामने आवेगी ।
दोनों चीजें मेरे हाथ हैं, चाहे सो मिल जायेगी ।।१२।।

दुर्गादास कर हिम्मत बोला, क्या मुख से फरमाती हैं ।
नीतिकार की वाणी हमको, कैसा ध्यान दिलाती है ॥१३॥

जननी सम है पांच जगत में, प्रथम आपको बतलाई ।
राज पत्नी है मातृ तुल्य, यह विषय बात अच्छी नाहीं ॥१४॥

सुनकर क्रोध स्वरों में बोली, तेरी अब मृत्यु आई ।
निरा मूर्ख है सोच समझ, यह वक्त लौट आवे नाहीं ॥१५॥

समझ गई हिन्दू है तू तो, अक्ल कहां से आयेगी ।
रमा रमणी तज तेरी जिन्दगी, गहरा कष्ट उठायेगी ॥१६॥

चाहे जितने दु:ख आये, पर कभी नहीं घबराऊंगा ।
सहर्ष मृत्यु का वरण करूँ, पर नहीं हिन्दुत्व गवाऊंगा ॥१७॥

लाल नेत्र भृकुटी कर टेढी, बोली बस प्राण गमावेगा ।
हो जावो तैयार अभी यहां, धड़ से शीश हटायेगा ॥१८॥

कहा पुत्र से इस काफिर का, करदे धड़ से सिर न्यारा ।
बोल सके नहीं वापिस मुख से, हुक्म तुझे है यह मेरा ॥१९॥

छिपा हुआ जेलर सुनके, तत्काल सामने चल आया ।
देख उसे अपने सन्मुख यों, बेगम का दिल घबराया ॥२०॥

उड़ गया होश नहिं बोल सकी कुछ, हुई रवाना वह तत्काल ।
मन ही मन पछताती, पूरी हो गई निष्फल मेरी चाल ॥२१॥

जेलर बोला इन्सान नहीं, भगवान रूप हो तनधारी ।
नहीं आपके लिए जेल है, यहां रहे अत्याचारी ॥२२॥

इतना कह जेलर ने उसी क्षण, द्वार जेल का खोल दिया ।
आज मिले नारायण मुझको, मुख से ऐसा बोल दिया ॥२३॥

दुर्गादास कहे क्या करते, क्यों मौत स्वयं बुलवाते हो ।
मेरे बदले कष्ट उठा, क्यों नाहक प्राण गमाते हो ॥२४॥

ऐसा कभी न होगा जेलर, कष्ट तुम्हें देकर जाऊं ।
चाहे जितने दु:ख आयें, पर कभी नहीं मैं घबराऊं ॥२५॥

शैतान जेल में रहता है, इन्सान कभी इसमें नांही ।
हे ! भारत के देव सिधारो, वार-वार अरजी याही ॥२६॥

रहा अटल वह सदाचार में, अमर हो गया उसका नाम ।
शीलाचार से जीत हुई यहां, आगे पावे उत्तम धाम ॥२७॥

'सोहन' मुनि कहे सदाचार से, जीवन सफल बना जाना ।
सुख सम्पत सौभाग्य व लक्ष्मी, पावेंगे इनसे नाना ॥२८॥

• •

३८ शिक्षा की चार बातें

(तर्ज:—लावणी खड़ी)

सभी शब्द हैं शिक्षामय, यदि तत्त्व जरा सा लें पहचान ।
सामान्य बात को भी ज्ञानी जन, समझा देते बना महान ।।टेर।।

धारा नगरी भूप भोज की, सभा बीच जो बात सुनाय ।
नई बात की एक अशर्फी, नरपति देता त्वरित मंगाय ।
एक वक्त इक गांव से चलकर, चार मनुष्य नगरी में आय ।
चारों ने सोचा यों मन में, नई बात ले सभा में जाय ।
कहा एक ने नूतन घटना, बना ले चले हो सम्मान ।। १ ।।

चलते मार्ग में अरहट देखा, दीनो एक ने बात सुनाय ।
देखो बन्धु ! रहा खूब यह, 'चनर मनर अरहट गरणाय' ।
घाणी देख यों दूजा बोला, 'तेली का बैल खली भुस खाय' ।
'आगे ऊभा तरकस बन्ध', तीजा शिकारी देख सुणाय ।
चौथे से जब कहा तो बोला, मैं बोलूंगा उस ही स्थान ।। २ ।।

अपने अपने पद को कहते, आये चारों सभा मझार ।
बड़े-बड़े पंडित वहाँ बैठे, देख उन्हें यों हुआ विचार ।
कैसे अपने पद को बोलें, क्या निकलेगा इनका सार ।
तभी भूप ने पूछ लिया, क्या नूतन बातें लाये लार ।
हम चारों के अलग २ पद, सुनलो राजन देकर ध्यान ।। ३ ।।

१. चनर मनर अरहट गरणाय । २. तेली का बैल खली भूसखाय ।
३. आगे ऊभा तरकस बन्ध । ४. राजा भोज है मूसलचन्द ।

सुनकर सभी सभासद् सोचे, इनको यहाँ पर क्यों लाये ।
आखिर में ये गंवार हैं, क्या समझ सभा में बुलवाये ।
भूप कहे सब सुनो पंडितो !, स्पष्ट अर्थ हो दरसाये ।
नहीं तो सब जागीरी जब्त कर, नगर सीमा से निकलाये ।
लगे सोचने अर्थ सभी, पर नहीं पाया है कुछ भी ज्ञान ।। ४ ।।

एक पंडित हो खड़ा सभा में, कहता हूँ सुनलो भूपाल ।
वात कही सब सच्ची-सच्ची, झूठ रत्तीभर नहीं है हाल ।
इस जीवन की सारी घटना, इन शब्दों में आ गई चाल ।
सुनकर भी नहीं चेते समझो, होगा उसका बुरा हवाल ।
एक-एक का अर्थ सुनाऊं, सुनो सभी जन देकर कान ॥ ५ ॥

प्रथम चरण में प्रथम पुरुष ने, चनर मनर अरहट गरणाय ।
इसका अर्थ है देह रूप यह, क्षण-क्षण में है रहा पलटाय ।
जो आयुष ले आया साथ में, उसे रहा यों व्यर्थ गमाय ।
संसार राग में मूर्छित होकर, नहीं जानता आयुष जाय ।
अब दूजे की बात कहूँ मैं, कितना उसमें सुन्दर ज्ञान ॥ ६ ॥

तेली के बैल सम चक्कर खाकर, रहा रात दिन यों हि गमाय ।
खाना पीना और पहनना, देह का रहा शृंगार बनाय ।
फूल रहा है देख सम्पत्ति, किन्तु साथ में यह नहीं जाय ।
अन्याय अनीति अत्याचार से, धन संग्रह कर कर्म कमाय ।
पर समझो सब छोड़ यहाँ पर, चला इकल्ला ही इन्सान ॥ ७ ॥

खड़ा सामने तरकस बन्ध वह, काल सांध कर तीर कमान ।
जो भी आया सन्मुख उसके वही काल का है मेहमान ।
फिर भी नर निःशंक हो रहा, कितना उसमें है अज्ञान ।
नींव लगाता कितनी गहरी, अमर रहूँगा मन में मान ।
लगे झपट्टा जभी काल का, भूल जायगा क्षण में भान ॥ ८ ॥

इतनी सुनकर भी नहीं चेता, वह मानव तो पूरा अन्ध ।
इसीलिए चौथे ने कह दिया, राजा भोज है मूसलचन्द ।
अपने हित की वात भूप सुन, माना मन में अति आनन्द ।
अर्थ दिया चारों को गहरा, मिटा दिया है सब दुःख द्वन्द ।
थी मामूली बात तथापि, कितना सुन्दर निकला ज्ञान ॥ ६ ॥

कथा प्रसंग कैसा भी हो पर, इसका सार यह सुन लेना ।
नहीं मालूम आ जाय अचानक, काल ध्यान यह दे देना ।
लो सामग्री धर्म ध्यान की, परभव में पावो चैना ।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, नरभव सफल बना लेना ।
दो हजार पच्चीस होलिका, जामोला में किया बखाण ॥ १० ॥

• •

३९ शुद्ध आय बनाम हक की रोटी

(तर्जः—लावणी खड़ी)

सदा रहे एकाग्र चित्त यह, अगर हृदय में सच्ची चाह ।
अन्याय आय को तजकर पकड़ो, न्याय युक्त जो उत्तम राह ।।टेर।।

एक वक्त उमरावसिंह नृप, बैठे अपनी सभा मझार ।
चर्चा चल गई इसी तरह की, क्यों नहीं होता चित्त सुधार ।
एक कहे नहीं आज हमारा, सब के साथ में शुद्ध व्यवहार ।
कहे दूसरा खाद्य बिगड़ गया, कैसे होवे शुद्ध विचार ।
तर्क वितर्क से जमा रहे, पर नहीं मिटा है मन का दाह ।। १ ।।

उसी समय वहाँ सन्त आ गये, नमन करी कह दीना हाल ।
क्यों नहीं रहता स्थिर होकर मन, फरमा दो इसमें क्या चाल ।
प्रभु भजन में टिके न क्षण भर, अगर उठाऊं कर में माल ।
उस ही क्षण मन भटक जाय, और देखे जग के कई जंजाल ।
कैसे हो चंचल मन कब्जे, ऐसी बतादो मुझको राह ।। २ ।।

सन्त कहे इस मन पर होता, असर अन्न का सुन भूपाल ।
बिना हक्क का लेकर खाता, इससे होता चित्त मलाल ।
हक की आय होती है कैसे, यह दरसावें आप दयाल ।
सन्त कहे उस वृद्धा से जा, पूछो वही कहेगी हाल ।
उससे हक की रोटी याचो, सुनी शीघ्र आया नरनाह ।। ३ ।।

आ वृद्धा से कहा रोटी दो, शुद्ध अन्न की लाकर के ।
मेरी इच्छा पूरण होगी, तेरी रोटी खाकर के ।
सुनकर बुढ़िया बोली राजन्, कह दूँ हाल सुनाकर के ।
आज नहीं है पूरे हक की, कैसे दूं मैं लाकर के ।
भूप कहे क्या कमी रही है, बतलाओ सुनने की चाह ।। ४ ।।

बुढ़िया बोली कात पूणियें, करती अपना गुजर बसर
सन्ध्या हो गई बिन प्रकाश के, कात रही मैं आलस कर ।
उसी समय एक जुलूस घूमता, रुका वहीं पर ही आकर ।
उस प्रकाश में कात लिया है, अतः नहीं हक का नरवर ।
इसीलिए नहीं शुद्ध अन्न की, कैसे रोटी दूं मैं लाह ।। ५ ।।

सुनकर यों सोचे नृप मन में, मेरे कोष में कैसी आय ।
उसके अन्न को खाकर सोचूं, मानस मेरा स्थिर हो जाय ।
यथार्थ बात है नहीं तजेगा, जब तक तू दिल से अन्याय ।
कभी न होगा चंचल मन स्थिर, कर ले चाहे लाख उपाय ।
नतमस्तक हो धन्य-धन्य कहे, बुढ़िया को वहाँ पर नरनाह ।। ६ ।।

पड़े प्रभाव अन्न का मन पर, ज्ञानी जन का है फरमान ।
अतः त्याग दो भ्रष्टाचार छल, छद्म जानकर दुःख की खान ।
नृप ने छोड़ दिया इक क्षण में, रक्खे आय पर पूरा ध्यान ।
प्राज्ञ 'प्रसादे' 'सोहन' मुनि कहे, धारो दिल में हो इन्सान ।
शुद्ध आय से मन स्थिर होता, यही बतायी ज्ञानी राह ।। ७ ।।



४० | अमर होने की चाह

(तर्ज—नेमजी की जान बणी भारी)

शांति नहीं बाहर में पावे, खोज कर निज में मिल जावे ॥ टेर ॥

अहो निरा अर्थ काज धावे, कई नर परदेशां जावे ।
शीत अरु ताप कष्ट पावे, पाय धन मन में हरसावे ॥

दोहा—ज्यों-ज्यों घर में द्रव्य की, बढ़ती जावे आय ।
त्यों-२ ही तृष्णा बढ़ जावे, समझो मन के मांय ॥
बात यह ज्ञानी फरमावे ॥ १ ॥

एक दिन कोष खुलवाया, सिकन्दर मन में हरसाया ।
अखूट धन मेरे पास आया, करूंगा सब मन का चाया ॥

दोहा—किन्तु तत्क्षण शाह के, ऐसी मन में आय ।
एक दिन सारे धन को तजकर, जाना परभव माय ॥
हृदय में शोक अति छावे ॥ २ ॥

अगर कोई मुझे बना देवे, चाहे वो जितना धन लेवे ।
मन्त्र या तन्त्र कर देवे, राज में आज्ञा फिरवावे ॥

दोहा—भृत्यों को आदेश दे, करो खोज सब ठोर ।
जानकार को यहां पर लाओ फिर जाओ चऊं ओर ॥
अमर जड़ी मुझको खिलवावे ॥ ३ ॥

भृत्य चऊं दिशा मांय जावे, मस्त एक बावा मिल जावे ।
नमन कर हाल दरसावे, सिकन्दर अमर होन चावे ॥

दोहा—जाकर कह दो शाह को, आ जावे मुझ पास ।
अमर होय तरकीब बतादूं, फल जावे मन आश ॥
दास जा सब ही दरसावे ॥ ४ ॥

बादशाह सुनी दौड़ आया, चरण में मस्तक झुकवाया ।
कहो क्या दिल मांहि आया, कहे शाह अमर होन चाया ॥

दोहा—कहे ओलिया जाइए, पूर्व दिशा के मांय ।
भरा कुंड जल तू पी लेना, देह अमर हो जाय ।।
वात सुन त्वरित वहां जावे ।। ५ ।।

कुण्ड लख मन में हरसावे, अंजुली भर पीना चावे ।
शब्द एक इतने में आवे, व्यर्थ क्यों दुख लेना चावे ।।

दोहा—तीन वक्त आवाज सुन, करे शाह यों बोल ।
गुप्त होय क्यों मना करे तू, बाहर आ मुख खोल ।।
समझ मुझ दिल मांही आवे ।। ६ ।।

आकृति त्वरित बाहर आई, कहे क्या जंची तेरे भाई ।
देख मैं रहा दुःख पाई, जरा से रहा हूँ घबराई ।।

दोहा—पानी इसका पी लिया, मौत न आवे पास ।
जरा देह को दुःख दे रही, कहता बीतक खास ।।
मान ले सुखी होन चावे ।। ७ ।।

बादशाह पुनः लौट आया, बात सब आकर दरसाया ।
जरा से दुखी न हो काया, श्रवण कर उपाय बतलाया ।।

दोहा—उत्तर दिशा में जाइए, तरुवर मिले रसाल ।
उसके फल खाने से तन में, जरा न आवे चाल ।।
सुनी सम्राट वहां जावे ।। ८ ।।

देखे नर लड़े मांहों मांही, कारण वह पूछे उन ताई ।
कहे वे सुन लो तुम भाई, जवानी रही तन्न में छाई ।।

दोहा—बुढ़ापा आवे नहीं, और न मुझे काम ।
सुनी बादशाह सोचे दिल में, यह भी काम निकाम ।
सद्य शाह लौट वहां आवे ।। ९ ।।

आधि अरु व्याधि नहीं आवे, अमर मन वह होना चावे ।
योगी तब उनको समझावे, सच्चा यदि अमर होन चावे ।।

दोहा—दीन दुखी की रात दिन, सेवा कर दिल खोल ।
अपने हाथ से अर्थ दान दे, मत करना अब पोल ।।
काम यह अमर बनवावे ।। १० ।।

बात सुन बोलो भविप्राणी, नहीं यह लक्ष्मी साथ जानी ।
दीन की रक्खो निगरानी, अमर यह बात हो जानी ।।

दोहा—'प्राग' कृपा 'मोहन' मुनि, कहता बारम्बार ।
नाम कमा लो सच्चा अवसर, भरलो अतुल भंडार ।।
साथ यह यश तब आवे ।। ११ ।।

४१ | बगुला भक्त मत बनो

(तर्ज—लावणी खड़ी)

करो कभी मत गर्व भक्ति का, मुझ सा जग में कौन महान ।
ढोंग रचाकर बगुला भक्त बन, ठगना चाहते हो भगवान ।।टेर।।

एक वक्त अर्जुन के दिल में, आया है ऐसा अभिमान ।
मेरे सम नहीं कोई भक्त है, देखे चाहे सभी जहान ।
चेहरे को लख कृष्ण समझ गये, इसके मन में आया मान ।
समझा दूँ जल्दी ही इसको, नहीं तो होगी इससे हान ।
यही सोचकर सद्य पास आ, किया अर्जुन को यों आह्वान ।।१।।

चलो घूमने जंगल में जहाँ, होवे शीतल मन्द समीर ।
दोनों बातें करते वन में, देखा है एक सन्त सुधीर ।
भूतल जिनका शयनाशन है, भोजन सूखे पत्ते नीर ।
शान्त दान्त गम्भीर वदन पर, कटि बंधी जिनके समसीर ।
इस घटना को देख धनुर्धर, पाया है आश्चर्य महान ।। २ ।।

अर्जुन पूछे यह क्यों रक्खी, कहो तपस्वी निज का हाल ।
क्रिया आपकी बहुत बड़ी पर, खड्ग देख मन हुआ मलाल ।
कारण क्या है जिससे आपने, हिंसक शस्त्र तन लीना डाल ।
शंका मेरी दूर करें अब, इसीलिए पूछा यह हाल ।
सुनकर ब्राह्मण बोला ऐसे, सुनो लगाकर पूरण ध्यान ।। ३ ।।

चार शत्रु हैं मेरे जग में, उनको लूंगा इनसे मार ।
सुनकर अर्जुन दंग रह गया, इनके कैसा दुश्मन चार ।
कौन जगत में शत्रु आपके, देवे उनके नाम उच्चार ।
सन्त कहे है पहला शत्रु, नारद मेरा सुनो विचार ।
सदा स्मरण कर मेरे प्रभु का, छुड़ा दिया है भोजन पान ।। ४ ।।

दूजी है या धृष्टा द्रौपदी, पंच पाण्डवों की नारी।
क्या कहूँ एक दिन दुर्वासा मुनि, भोजन हित आये द्वारी।
धर्मपुत्र का श्राप टालने, याद किया जब गिरधारी।
भोजन त्याग कर गये उसी क्षण, झूठी खिलाई तरकारी।
और अनेकों वक्त प्रभु को, बुला - बुला कीना हैरान ॥ ५ ॥

प्रहलाद भक्त कहलाता जग में, तीजा दुश्मन मेरा जान।
उसने भी कम कष्ट दिया क्या, हृदयहीन होकर नादान।
तेल कटाह में पचा खूब, और रखा आवड़े के दरम्यान।
हस्ती के पद से कुचलाया, प्रकटाया खंभे में आन।
अपनी रक्षा करने को वह, करता नित्य प्रभु का आह्वान ॥ ६ ॥

चौथा है बदमाश धनुर्धर, अर्जुन इसका है अभिधान।
उसकी धृष्टता क्या बतलाऊँ, बल में प्रभु से है बलवान।
बुला प्रभु निज अश्व हकाये, बना लिया अपना रथवान।
आप अकड़कर रथ में बैठा, लेकर हाथ में तीर कमान।
सुनकर बातें ब्रह्म ऋषि की, आया अर्जुन के मन भान ॥ ७ ॥

भक्ति और प्रीति को लखकर, गया धनुर्धर का अभिमान।
कभी न लाया जीवन में 'मद', मैं ही हूँ एक भक्तिवान।
ज्ञानी ध्यानी भक्तिवन्त है, केई इस जग में इन्सान।
अहंकार को तजो हृदय से, नहीं साधना मेरे समान।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, दर्प दलन कर लो गुणवान ॥ ८ ॥



४२ काँटों के बदले फूल दो

(तर्ज—राधेश्याम रामायण)

उपकारी पर उपकार करे, उस नर की क्या अधिकाई है ।
उपकार करे अपकारी पर, उस नर की बहुत बड़ाई है ।।१।।

एवन्ती का भूप पृथ्वीसिंह, प्रजापाल था वह नामी ।
शौर्य तेज से सदा वहां पर, चोर जार की थी खामी ।।२।।

बड़े बड़े उमराव मुसद्दी, सदैव सेवा में रहते ।
याचक भाट करें तारीफें, देश विदेशों में फिरते ।।३।।

एक समय नृप सहल करन को, सेना सब तैयार करी ।
दल बल सहित आ रुका वहां पर, वनस्थली थी हरी भरी ।।४।।

अश्व घुमाने लगा भूपति, देख सभी जन हर्ष धरें ।
चमक अश्व ले गया भूप को, सारे जन मन खेद करें ।।५।।

अन्वेषण कर लिया बहुत, पर भूप कहीं ना पाये हैं ।
दुखित हृदय मानवगण वहां से, विमुख लौट कर आये हैं ।।५।।

अश्व गति को देख भूपति, मन में अति घबराया है ।
लगाम हाथ से शिथिल हुई, तब अश्व तत्र ठहराया है ।।७।।

अरण्य भयंकर मध्य भूपति, क्षुधा प्यास से घबराया ।
पानी ढूंढ़ते चल कर नरपति, बेर झाड़ के तल आया ।।८।।

विश्राम लिया कुछ फल खाया, तब हृदय बीच सन्तोष हुआ ।
शिला खण्ड को रख सिर नीचे, सोता नृप निश्चित हुआ ।।९।।

भील एक जंगल में आया, लक्कड़ भारी लेने काज ।
क्षुधा पीड़ित था तीन दिनों का, फेंका पत्थर हुआ अकाज ।।१०।।

उपल खण्ड जा गिरा भूप शिर, खून खलक निकला भारी ।
दौड़ सिपाही पकड़ भील को, जोरों से बेंतें मारी ।।११।।

बांध भील को उठा उसी क्षण, कारागृह में डाल दिया।
निश्चय मेरी मृत्यु आ गई, किरात ने मन जान लिया ॥१२॥

सूर्योदय ला राज सभा में, भूप समक्ष मैं खड़ा किया।
उपल फेंककर सिर में मारी, गुनाहगार है शून्य हिया ॥१३॥

भूपति अपने पास बुला, सब हाल हकीकत पूछी है।
भील कांपते गात्र भूप से, अर्ज करी सब सच्ची है ॥१४॥

तीन दिनों का था मैं भूखा, होश नहीं कुछ भी आया।
उपल उठा कर फेंक दिया, मैं बेर नहीं मृत्यु पाया ॥१५॥

सोचे सुनकर नृप मन में, कुदरत ने मार्ग दिखाया है।
धिक्कार तेरे राजापन को, तू प्रजापति कहलाया है ॥१६॥

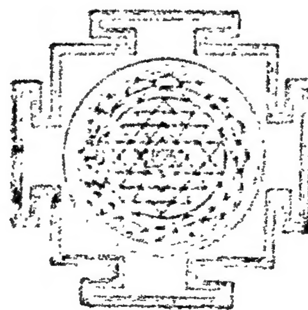
मुझ से बेर वृक्ष ही अच्छा, जो मार खाय फल देता है।
हो के तू नर नाथ यहां, शिक्षक से बदला लेता है ॥१७॥

हुक्म दिया भण्डारी को, तुम इसका सभी प्रबन्ध करो।
जितना भी खर्चा हो घर का, राज्य कोष से सभी भरो ॥१८॥

आज्ञा के अनुसार किया, तब सभी सभासद् यों बोले।
जो सिर पर पत्थर दे मारे, है कौन दोषी इसके तोले ॥१९॥

राजा ने सबको समझा कर, उनकी शंकायें दूर हरीं।
सभी सभासद् गये वहां, नृप की महिमा खूब करी ॥२०॥

जो करे बुरे पर भी अच्छा, उस नर की जग में बलिहारी।
'प्राज्ञ' प्रसादे 'सोहन' मुनि कहे, बिरले ऐसे उपकारी ॥२१॥



शुद्धि-पत्र

शुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
हा	कहो	१	१८
ण	गण	२	७
ुक्त	मुक्त	७	१९
-	मैं	८	७
हल के मध्य	महल मध्य	११	३
हीं	कहीं	१२	१६
ांडनपुर	मंडनपुर	१५	५
वा	देना	१५	१७
ाल	ध्यान	१५	२३
पति	भूपति	१६	२१
गर	नार	२०	६
दिन दिन-दिन	दिन-दिन	२०	१६
होया	होय	२१	८
ाप	आज	२१	१६
ज	भज	२१	२३
पारी	अपारो	२४	१९
रियारो	इरिया रो	२५	२०
लहराये	बहराये	२६	३३
मान	भान	२८	३३
रोग	रोग से	३१	१४
पंडित	पंडिता:	३३	१४ व १६
रच	स्व	३५	१०

पृष्ठ ३६ पर १९वीं कड़ी में चौथी पंक्ति छूट गई, वह इस प्रकार है:—
जाना होगा छोड़ यहाँ का यहाँ ही ।

जगारे	जमा रे	३६	१०
चक	चरु	३८	३५
माल कमी	माल में कमी	३९	२०
भाग्य लक्ष्मी	भाग्य योग लक्ष्मी	३९	३४
वंधन	वंधव	४१	३
पारण	पाटण	४९	११
कहलावा	कहलाया	४९	३
भागवत	भगवत	५१	[illegible]

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ
समान	समाज	५१
वे कर	वे अपने कर	५२
त्याग हूँ	त्याग दूँ	५४
रहो	रटो	५६
क्या	×	५९
भूवर भूधर	भूधर भू धन	६०
धर्राय	थर्राय	६०
स्मरन् खलु तइ वैरं,	स्मरद्भिः खलु तद् वैरं	६१
इन्द्रियै स्वयं पुर्नजितः ।।	इन्द्रियैस्त्वं पुर्नजितः	६३
रव्वार	ख्वार	६७
भल	फल	७२
भाई	आई	८३
भाव	भाव को	८३
जान हारी	जाननहारी	८७
छाया	आया	८९
दशन	दर्शन	९८
करे	कहे	९८
रही तन्न मे	तन में रही	९८
मुभे	सूझे	

ooo